वर्ष ३ | ओ३म् **भक्ति** ओ३म् | संख्या १०

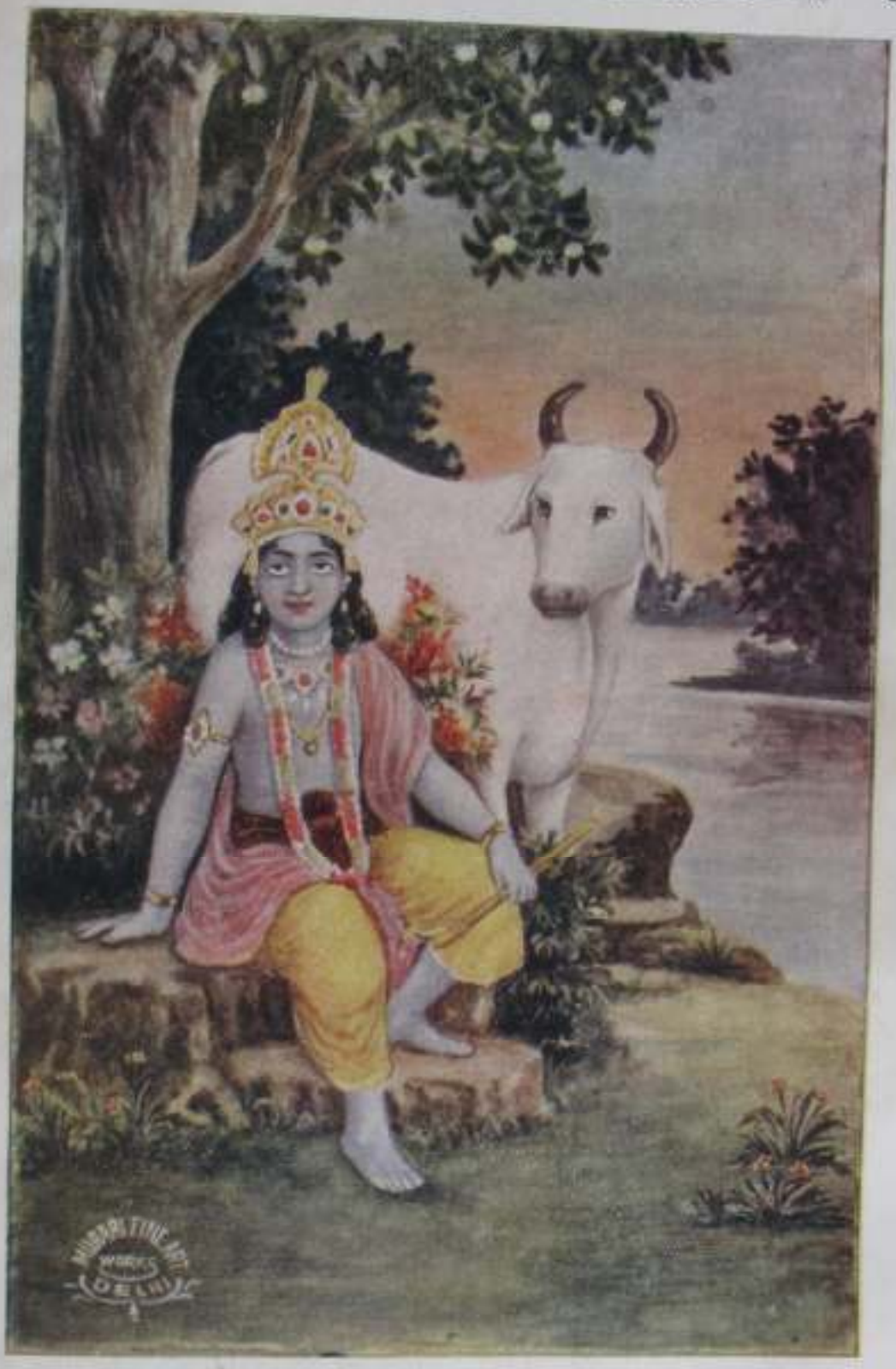

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

वार्षिक चन्दा २) | सम्पादक— म० कृष्णानन्द, भूमानन्द आषाढ़, १९८६ | एक प्रति का मूल्य ।)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, करना, न घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. शिवस्तुति		३६३
२. रजकोद्धार		३६५
३. लगाओ पार (कविता) [	ले० श्री पं० रमाशंकर जी मिश्र "श्रीपति"	३६७
४. भगवद्भक्ति (	ले० श्रीपूज्य भोलेबाबा जी अनूपशहर	३६७
५. कहते हैं (कविता) [	ले० श्री पं० गंगा-विष्णुजी विद्याभूषण	३७२
६. जस कछनी तस चाहिय नाचा [	ले० श्री पूज्य आत्मानन्द जी सरस्वती	३७३
७. आओ (कविता) [	ले० श्री मदन-गोपाल जी सिंहल	३७७
८. श्रीराम नाम महिमा [	ले० श्री० गंगानाथ जी उपाध्याय	३७७
९. गुरु वन्दना (कविता) [	ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी	३८१
१०. पत्र पुष्प		३८१
११. सुखी कौन है [	ले० श्री महात्मा राम	३८२
१२. महात्मा सच्चिदानन्द का उपदेश [	ले० भक्त शिरोमणी श्रीमथुराप्रसाद जी जयपुर	३८६
१३. उपदेशामृत [	ले० श्री पूज्य भोलेबाबा जी अनूपशहर	३८९
१४. अनन्त कथायें [	ले० श्री पं० अनन्तराम जी योगाचार्य	३९०
१५. भगवद्भक्ति [	ले० श्री पं० रेवाधर जी पाण्डेय	३९१
१६. भजन		३९३

पुस्तक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम, रेवाड़ी।

भक्ति के संरक्षक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
ले॰ क॰ सरदार रघुबीरसिंह जी सांधोवालियां राजा सांसी, अमृतसर	१११)
ला॰ नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी।	१०१
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा	५१)
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा	५१)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
म॰ शोभाराम जी डूंगरवास	"
राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास	"
बाई लक्ष्मीदेवी भगनी राव जगमालसिंहजी रईस नांगल	"
बा॰ स्वयम्बरदास जी बी॰ ए॰ इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्ज पटना।	"
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	"
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया चावड़ी बाजार दिल्ली	"
बक्शी चाननशाह एम. ए. एल. एल. बी. इन्कम्टैक्स आफीसर जालंधर	"
पं॰ गोपीनाथ जी [बिहाली निवासी] मालिक फार्म काशीनाथ बन्नूमल गली परांवठा दिल्ली	"
श्रीमती खुशालदेवी धर्मपत्नी चौ॰ नवलसिंह जी कोसली।	"
सेठ शिम्भुदयाल जी बीकानेर	"
चौ॰ रामजीलाल जी धवाना, हांसी	"
चौ॰ चन्दनसिंह जी कप्तान दतिया राज्य	"
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा	"
ला॰ दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर	"
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली	"
लक्ष्मी देवी खोसला धर्मपत्नी ला॰ बद्रीनाथ जी बी. ए. श्रीनगर	"
बाई बदामो देवी पुत्री ला॰ गनेशीलाल चर्खीदादरी	"
श्रीमती भक्तारणीदेवी धर्मपत्नी भक्त नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	"
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी ला॰ प्रभुदयाल जी	"
श्री॰ गणपतिदेवी धर्मपत्नी ला॰ गंगाप्रसाद जी दादरीवाले, साहबगंज	२५)
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा	५१)
मक्खी चरणूमल बलीराम जी भटण्डा	५१)
सर आपा राव सावोले साहिब सी॰ एस॰ ई॰ के॰ बी॰ ई॰ रेवेन्यू मेम्बर गवालियर	५१)
राव गजराजसिंह जी बी॰ ए॰ एल॰ एल॰ बी॰ गुड़गावां	२५)
सेठ नागरमल जी सेखासरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मिचनाबाद	२५)

ला० जोहरी मलजी रेवाड़ी
ऐस० जे० राव पंवार होम मेम्बर गवालियर स्टेट „ ५१)
राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली २५)
ला० रामकुंवार जी सीनयर सब जज जालंधर २५)
सरदार भगतसिंह एडवोकेट जालंधर २५)
पी० एन० कोल बैरिस्टर दिवान भूतपूर्व देवास स्टेट लाहोर २५)
चौ० सुन्दरलाल नन्दलाल रईसान कमालिया जि० मिन्टगुमरी २५)
चौ० जीवनदास जी आनरेरी मजिस्ट्रेट झंग २५)
सूबेदार जगरामसिंह जी कोसली २५)

सहायक

चौ० हुकमसिंह जी निखरी ११)
बा० वैकुण्ठनाथ जी दिल्ली ११)
पं० जगन्नाथ जी रेवाड़ी ११)
चौ० शिवप्रसाद सेक्रेटरी अहीर स्कूल रेवाड़ी ५)
रामप्रसाद जी झाड़सा ५)
चौ० रामजीलाल जी कन्स्टेबल नांगलोई ५)
भक्त बनारसीदास जी दिल्ली ५)
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौ० जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ़। ५)
चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)
श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहबाद बैंक देहली। ५)
ला० देवकीनन्द जी फिरोजपुर ५)
महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर चरणदासियान बल्लीमारान दिल्ली ५)
मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर ५)
राय बहादुर लेखनारायण सिंह जी बाढ़, पटना ५)
डाक्टर कवलकिशोर सिंह जी कलकत्ता ५)
राय साहब बांकेबिहारीलाल जी बी० ए० तहसीलदार चिड़ावा ५)
सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी ५)
ला० रामचन्द्र जी वैद्य „ ५)
राव घीसाराम जी गढ़ीथोलनी ११)
बा० शिवरामसिंह जी „ ७)
जमादार दीपचन्द जी „ ५)
चौ० इन्द्रसिंह जी सिरहोल १०)
ला० ओंकारमल जी कानपुर ५)

चौ० गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा परगना नारनौल	११)
चौ० मनोहरसिंह जी ,, पाल्हावास, रेवाड़ा	११)
ला० छोटेलाल घासीराम जी आर्यन मर्चेण्ट चावड़ीबाजार, दिल्ली	११)
चौ० दौलतराम जी पटवारी नाहरी, सूबा दिल्ली	५)
भक्त हरीचन्द जी प्रेमहाउस, ,,	,,
चौ० धर्मसिंह जी कालूवास, तहसील रेवाड़ी	,,
पं० मथुराप्रसाद ग्राम जमालपुर पो० कासन, गुड़गावां	५)
श्री० दिलीपसिंह जी, कैथल मंडी, करनाल	५)
ला० सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली	११)
चौ० मूलचन्दजी गुरावड़ा जि० गुड़गावां	५)
बा० जगन्नाथ यादव सदर बाजार लखनऊ	५)
ला० अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी	११)
सुमित्रादेवी ठिकाना ला० प्रेमशंकरजी पान का दरीबा जैपुर	५)
माई गुलाबोदेवी दिल्ली	५)

चतुर्थ वर्ष का पहिला अंक

भगवदांक होगा ।

इस मायावी युग में रात दिन प्रकृति के पदार्थों के पीछे दौड़ धूप करने वाले, अशान्त चित्त तथा शुष्क हृदय पुरुषों को भगवत् की ओर आकर्षित करने और उनके हृदयों में प्रेम और आनन्द की लहर उत्पन्न करके शान्ति स्थापित करने का जो उद्योग भक्ति ने आरम्भ किया है वह भक्ति के पाठक भली भांति जानते हैं । इस ही के सिलसिले में गतवर्ष भगवद्भक्तों के अमृत रूपी परम मनोहर चित्रों सहित चरित्र "भगवद्भक्तांक" के रूप में प्रकाशित किये थे। इसी प्रकार इस वर्ष भी नूतन वर्षारम्भ में स्वयं भगवच्चरित्र रूपी "भगवदांक" निकालने का निश्चय किया है । एतदर्थ तत्त्ववेत्ता सन्त महात्माओं, भक्तों तथा विद्वानों से लेख मंगाने का प्रबन्ध किया गया है। इसमें एक दर्जन तिरंगे और इकरंगे चित्र होंगे तिस पर भी मूल्य केवल ।।।) मात्र ही रक्खा गया है । यह पत्र स्थाई ग्राहकों को बिना मूल्य ही मिलेगा परन्तु पृथक् लेने वालों को ।।।) में मिलेगा । लाभ का सौदा है । अभी से २) देकर ग्राहक बनने पर आपको ।।।) का तो भगवदांक ही मिल जायगा और शेष तीनों अंक १।) में ही रहे । इसलिये स्थाई ग्राहकों को शीघ्रता करनी चाहिये और २) मनि आर्डर द्वारा भेज कर स्थाई ग्राहकों में नाम लिखा लेना चाहिये । ग्राहकों की सेवा में भी निवेदन है कि वह अपने इष्टमित्रों में से कम से कम दो दो ग्राहक बनाने की कृपा करें । इससे भक्ति का परिवार सहज में ही द्विगुण त्रिगुण हो जायगा । आशा है ग्राहकानुग्राहक इस प्रार्थना पर ध्यान देकर दो दो ग्राहक बनाने का प्रयत्न करेंगे । भगवत् आपके इस शुभ कार्य में सहायक हों ।

सम्पादक

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥

Lakshmibilas Press, Calcutta.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ३ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आषाढ पूर्णिमा सं० १९८६। | अङ्क १०

शिव स्तुति

नमस्ते शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय वेधसे।
नमस्ते शोचिषे अस्तु नमस्ते उपवासिने ॥ १ ॥

शितिकण्ठ, नीलग्रीव वेधा के लिए प्रणाम है और आप दीप्तिमान् के लिए प्रणाम है, उपवासी के लिए प्रणाम है ॥ १ ॥

नमस्ते मीढुसे अस्तु नमस्ते गदिने हर।
नमस्ते विश्वतनवे वृषाय वृष रूपिणे ॥ २ ॥

मीढुष शिव को, गदाधारी हरको, संसार रूप शरीर वाले को तथा वृष रूप वृष को प्रणाम है ॥ २ ॥

अमूर्त्ताय च देवाय नमस्तेऽस्तु पिनाकिने।
नमः कुब्जाय कूपाय शिवाय शिवरूपिणे ॥ ३ ॥

अमूर्त्त देव पिनाकी के लिए, कुब्ज कूप वासी देव के लिए और कल्याणमय रूप वाले के लिए प्रणाम है ॥ ३ ॥

नमस्तुंडाय तुष्टाय नमस्तुटितुटाय च ।
नमः शिवाय शान्ताय गिरीशाय च ते नमः ॥ ४ ॥

तुण्ड, तुष्टिमान्, तुटितुट शिवके लिए प्रणाम है, और शिव शान्त, गिरीश के लिए प्रणाम है ॥ ४ ॥

नमो हराय हिमाय नमो हरि हराय च ।
नमोऽघोराय घोराय घोरघोर प्रियाय च ॥ ५ ॥

हर के लिए, हिम रूपके लिए, हरिहर के लिए, घोर अघोर और घोर घोर प्रिय के लिए प्रणाम है ॥

नमोऽघंटाय घंटाय नमो घटिघटाय च ।
नमः शिवाय शान्ताय गिरीशाय च ते नमः ॥ ६ ॥

अघण्ट के लिए, घण्टा वाले के लिये, रचयिताओं के रचयिता के लिये, शिव, शान्त गिरीश के लिए प्रणाम है ॥ ६ ॥

नमो विरूपरूपाय पुराय पुर हारिणे ।
नमः आद्याय बीजाय शुचयेष्ट स्वरूपिणे ॥ ७ ॥

हरि रूप पुरहारी और पुर रूप के लिए, और आद्य बीज शुचि और पृथिवी आदि अङ्ग रूप वाले को प्रणाम है ॥ ७ ॥

नमः पिनाक हस्ताय नमः शूलासि धारिणे ।
नमः खट्वांग हस्ताय नमस्ते कृत्ति वाससे ॥ ८ ॥

पिनाक हस्त के लिए, शूल और तलवार धारण करने वाले के लिए, और चर्म वस्त्र धारण करने वाले के लिए प्रणाम है ॥ ८ ॥

नमस्ते देव देवाय नमः आकाश मूर्त्तये ।
हराय हरि रूपाय नमस्ते तिग्म तेजसे ॥ ९ ॥

देव देव के लिए, आकाश मूर्त्ति के लिये, और अतितीखे तेज वाले हरि रूपी हर के लिए प्रणाम है ॥ ९ ॥

भक्ति प्रियाय भक्ताय भक्तानां वर दायिने ।
नमोस्तु मूर्त्तये देव जगन्मूर्ति धराय च ॥ १० ॥

भक्तों के प्रिय भक्त और भक्तों को वरदान देने वाले जगत् भर की मूर्तियों में व्याप्त मूर्ति स्वरूप शंकर को प्रणाम है ॥ १० ॥

नमश्चन्द्राय देवाय सूर्याय च नमो नमः ।
नमः प्रधानदेवाय भूतानां पतये नमः ॥ ११ ॥

चन्द्र और सूर्य में व्याप्त देव को, प्रधान देव को और भूतोंके पति को नमस्कार है ॥ ११ ॥

रजकोद्धार

श्री चैतन्य महाप्रभु संन्यास ग्रहण के अनन्तर शान्तिपुर से नीलाचल के मार्ग में जा रहे हैं मुख में हरिनाम है, नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही है, शरीर की सुध नहीं है, हृदय में श्रीजगन्नाथ जी के चरणों का ध्यान है, प्रेम से विह्वल हो रहे हैं साथ में रक्षा के लिये केवल पांच भक्त संग चल रहे हैं। उसी रास्ते पर एक रजक कपड़े धो रहा था। अचानक प्रभु का ध्यान उस ओर गया और उधर ही जाने लगे। पीछे पीछे भक्तगण भी चलने लगे। रजक इनका आना देख कर भी कुछ न बोल उसी तरह अपना कपड़ा धोता रहा। प्रभु सीधे रजक के निकट जा खड़े हुये। भक्तगण उनके मन का भाव कुछ भी न समझ सके। रजक भी सोचने लगा कि बात क्या है? इसी समय श्री गौराङ्ग रजक से बोले "हे भाई रजक! एक बार हरि बोलो"। रजक समझा कि साधुलोग भिक्षा मांगने आये होंगे इसलिये 'हरि बोल' इस आज्ञा का लक्ष्य न कर सरलता से बोला "महाराज! मैं बड़ा गरीब मनुष्य हूं अतएव मैं आपको कुछ भिक्षा नहीं दे सकता।

प्रभु बोले, "रजक! तुमको कुछ भी भिक्षा नहीं देनी पड़ेगी केवल हरि बोलो" रजक मन में विचार ने लगा कि इन साधुओं के मनमें अवश्य कुछ न कुछ है नहीं तो मुझे हरि बोलने का क्यों आग्रह करते इसलिये हरि न बोलना ही अच्छा है। ऐसा विचार कर रजक बिना मुंह उठाये ही कपड़े धोते धोते बोला, "महाराज मेरे बच्चे कच्चे बहुत हैं, मैं बड़ा परिश्रम करके उनके पालन के लिये अन्न संग्रह करता हूं। मैं यदि अभी से हरि बोला बन जाऊं तो मेरी सन्तानों को उपवास करके मरना पड़ेगा"।

प्रभु कहने लगे, "रजक! तुमको हमलोगों को कुछ भी देना नहीं पड़ेगा, केवल मुंह से एक बार हरि बोलो। हरि नाम बोलने में न तो कुछ खर्च होता है और न कोई कार्य में बाधा पड़ती है। अतएव एक बार हरि बोलो"।

रजक विचार ने लगा कि क्या आश्चर्य की बात है? यह संन्यासी क्या चाहता है? न मालूम क्या होता क्या हो जाय। इस लिये मेरे लिये हरि-नाम उच्चारण न करना ही अच्छा है। इस तरह घबड़ा कर रजक कहने लगा, "बाबा! तुम लोगों को कुछ काम धाम तो है नहीं तुम सब कुछ करने में समर्थ हो। मैं परिश्रम करके परिवार पालता हूं। अब बताओ अपने कपड़े धोऊं या हरि नाम बोलूं?

प्रभु फिर कहने लगे, "रजक! यदि तुम दोनों काम एक साथ नहीं कर सकते तो लाओ तुम्हारे कपड़े मुझे दो मैं धोता हूं और तुम हरि बोलो"!

यह सुन भक्तगण और रजक सभी आश्चर्य करने लगे। रजक विचार ने लगा कि गोसाईं से पीछा छुटाना तो बड़ा मुश्किल हो गया। अब क्या करूं? जो भाग्य में बदा होगा सो होगा। यह विचार प्रभु की तरफ देख कर बोला, "नहीं महाराज! आपको कपड़े नहीं धोने होंगे, आप शीघ्र बताइये मुझे क्या

बोलना होगा वही बोलता हूं। "अभी तक रजक ने मुंह उठा कर नहीं देखा था। अब कपड़े धोने बन्द कर मुंह उठा कर, प्रभु की तरफ देख कर, उपरोक्त वचन कहते हुए क्या देखाता है कि संन्यासी सकरुण नेत्रोंसे उसकी ओर देख रहे हैं और उनमें से अश्रु धारा पड़ रहीहै। यह देख रजक कुछ मुग्ध सा होकर कहने लगा, "महाराज! कहो क्या बोलूं।"

प्रभु बोले, "बोल हरि बोल"
रजक बोला, 'हरि बोल"
प्रभु कहनेलगे, "फिर हरि बोल"
रजक फिर बोला, "हरि बोल'

रजक प्रभु के अनुरोध से दो बार 'हरिबोल' कह कर अपना स्वातन्त्र्य खो बैठा और विह्वल हो अपने आप अनिच्छा होते हुये भी ग्रहग्रस्त की तरह 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहने लगा। इस तरह बोलते २ क्रमसे विह्वल हो वह बाह्य ज्ञान शून्य हो गया और उसकी आंखों से शत सहस्र धारा बहने लगी। थोड़ी ही देर में दोनों बांह उठा कर हरि कीर्तन करता हुवा नृत्य करने लगा।

भक्तगण विस्मित हो खड़े देखने लगे। परन्तु प्रभु का कार्य समाप्त हो गया था इसलिये द्रुत वेग से जाने लगे। भक्तगण भी पीछे हो लिये। थोड़ी दूर जाकर सब बैठ कर रजक की लीला देखने लगे। रजक टेढा होकर नाच रहा है। प्रभु के चले जाने का भी उसको पता नहीं है कारण उस भाग्यवान् को बाह्यज्ञान तो है नहीं अन्तर में गौर रूप देख कर मुग्ध हो रहा है।

भक्तगण अवाक हो देख रहे हैं। थोड़ी देर में रजक की स्त्री भोजन सामग्री ले स्वामी के निकट आई। उसका भाव देख थोड़ी देर तो स्तब्ध सी खड़ी रही परन्तु पीछे कुछ न समझ कर हास्य करती हुई कहने लगी, "वाह! यह क्या? तुम कब से नाचना सीख गये"? किन्तु रजक कोई उत्तर न दे कीर्तन करता हुवा हाथ उठाये हुये वक् ही घूम घूम कर पूर्ववत् नृत्य करता रहा। स्त्री स्वामी को बाह्य ज्ञान शून्य देख उसे कुछ हो गया समझ डर कर चीत्कार करती हुई ग्राम की तरफ दौड़ी और पड़ोसियों को पुकारने लगी। उनसे बोली कि मेरे स्वामी को भूत लग गया है। दिन में भूत का कोई डर नहीं ऐसा विचार कर सब मुहल्ले वाले रजकके पास आये। उसे देख कर डर के मारे किसी को उसके पास जाने का साहस न हुवा। अन्त में किसी एक भाग्यवान ने साहस करके उसको पकड़ा जिससे उसे अर्द्धबाह्य ज्ञान हुवा और वह अपने पकड़ने वाले को आलिङ्गन करने लगा। आलिङ्गन पाते ही उसकी भी ठीक वही दशा हो गई और दोनों नृत्य करने लगे। इस तरह क्रमसे सभी पर उस महा वायु का असर होगया यहां तक कि रजकिनी भी उसी भांति उन्मत्त हो सब के साथ नृत्य करने लगी।

इस प्रकार महाप्रभु मार्ग में कितनों ही का उद्धार करते जाते थे। किसी को दृष्टि मात्र से स्वर्ण सम कर देते तो किसी को शक्ति संचार से पारस बना देते।

(अमिय निमाई चरित्र से)

लगाओ पार

[ले० श्री० पं० रमाशंकर जी मिश्र 'श्रीपति']

आठों याम नहीं तोभी कभी एक याम सही,
ध्यान तो अवश्य कर लेता हूं मैं एक बार।
लोग बार-बार क्यों पुकारा करते हैं तुम्हें,
वे तो हैं तुम्हारे लिये बने हुये नित्य भार
याचक नहीं हूं न तो है यह स्वभाव मेरा,
होते ही प्रभात आपका मैं खटकाऊं द्वार।
आज मझधार पाप भार भरी नाव मेरी,
डूबती बचाओ, आओ, देखें तो लगाओ पार

भगवद्भक्ति

सत्संग निष्ठा ।

जन्मान्तर शताभ्यस्ता मिथ्या संसार वासना ।
क्षीयते यत्प्रसादेन तं वन्दे साधु संगमम् ॥

छप्पय

संत संग सुख मूल, संग दुर्जन दुखदाई ।
करे सदा सत्संग, दुष्ट जन दूर बिहाई ॥
करे संत का संग, भक्ति भगवत् की पावे ।
भवसागर हो पार, लौट नहिं जगमें आवे ॥
भोला ! करि सत्संग नित, सद्ग्रन्थन अवलोक रे ।
सत्य चिंतवन करि सदा, तज भय चिंता शोकरे ॥

सारामः—महाराज ! कल आपने धर्म प्रचारकों की कथायें सुनाई थीं। शास्त्रों का सिद्धान्त यह है, कि इस जीव को संसार बंधन से यानी आवागमन के चक्र से छूटने के लिये सत्संग ही मुख्य साधन है, सत्संग के सिवाय अन्य कोई साधन नहीं है। कृपा करके आज सत्संग शब्द का अर्थ और सत्संग की महिमा सुनाइये।

मस्तरामः—भाई मंसाराम ! सत्संग की महिमा अपार है, कोई वर्णन करने को समर्थ नहीं है, फिर भी तू ने प्रश्न किया है इसलिए दिग्दर्शन मात्र मैं तुझे सत्संग की महिमा सुनाता हूं। सत्संग के प्रभाव से शीघ्र ही भगवत् की प्राप्ति होती है और भगवत् प्राप्ति होने से जीव कृत कृत्य और सर्वदा के लिये सुखी हो जाता है, फिर उसे स्वप्न में भी दुःख से संबंध नहीं होता ! साधु सेवा से सत्संग की प्राप्ति होती है इसलिये साधु सेवा की महिमा भी किंचित् वर्णन करूंगा।

देख, सत् का अर्थ सत्य है। सत्य केवल भगवत् ही हैं। भगवद्भक्त भी भगवत् स्वरूप ही हैं, इसलिये भगवद्भक्त भी सत्स्वरूप है इसलिये वस्तुतः भगवद्भक्तों के संग का नाम ही सत्संग है शास्त्रों का अध्ययन करना और तीर्थों का सेवन करना भी सत्संग कहलाता है। शास्त्रों के पढने, विचारने अभ्यास करने और शास्त्रानुसार बर्ताव करने से सार असार का ज्ञान होता है, ईश्वर, माया और जीव का स्वरूप जानने में आता है, नरक के दुःखों से भय लगता है और भगवत् की परम शोभा और अनुपम माधुरी का लाभ होता है। भगवत् शास्त्रों के सार हैं। जब भगवत् में बुद्धि लग कर दृढ़

स्थिर हो जाती है तो जीव कृतार्थ होकर सुख दुःख भलाई बुराई से अलग होकर आनन्द स्वरूप हो जाता है, इसलिये शास्त्रों का अवश्य अध्ययन और विचार करना चाहिये। जिन में भगवच्चरित्र और भगवत् स्वरूप का वर्णन हो, उन को शास्त्र कहते हैं। जैसे श्रुति, स्मृति, भागवत आदि पुराण, महाभारत रामायणादि इतिहास। यदि संस्कृत वाणी का संस्कार न हो तो भाषा ग्रन्थ तुलसीकृत रामायण विनय पत्रिका, सूर सागर, ब्रज विलास, कृष्णदास की वाणी, नन्ददास की वाणी इत्यादि का अध्ययन और अभ्यास करे! इनके अवलम्बन से वह ही बोध हो जाता है, जो संस्कृत से होता है। दो चार महीने परिश्रम करने से भाषा पढने की गति हो जाती है, फिर भी कोई न पढे तो दुर्भाग्यता ही है। बहुत लोग विरुद्ध धर्मियों के रचे हुये ग्रन्थों के भाषांतर करने में विशेष करके काल व्यतीत करते हुये देखने में आये हैं, ऐसा करना सर्वथा त्यागने योग्य है। न तो विरुद्ध धर्मियों के रचे हुये ग्रन्थ पढने चाहियें, न उनके भाषांतर किये हुये अपने ग्रन्थ ही देखने चाहियें क्योंकि उन भाषांतर करने वालों को ग्रन्थ का मुख्य अभिप्राय ही मालूम न था। अपने आचार्यों के तिलक से उनके किये हुये भाषांतर का मिलान किया जाय तो मुख्य अभिप्राय ही लुप्त और ध्वस्त हुआ जानने में आता है। सिवाय इसके कोई तर्जुमा-टीका (Translation) ऐसा नहीं है कि टीकाकारों ने अपने दीन के विरुद्ध होने के कारण प्रकट अथवा किसी व्याज से हिन्दू मत की निन्दा न लिखी हो। अबुलफजल का किया हुआ महा भारत आदि ग्रन्थों का टीका जला देने योग्य है। उनमें विशेष करके अर्थ का अनर्थ कर दिया है। यदि किसी ने दूषण रहित टीका किया भी है तो लिखावट ऐसी है कि भगवत् और महात्माओं के संबन्ध में कुछ मर्याद नहीं रक्खी है, उन के वचन कठोर और तीक्ष्ण हैं कि बाण के समान हृदय में लगते हैं। इसके सिवाय ऋषीश्वरों और भगवद्भक्तों की वाणी में जो रस और प्रभाव है, वह अन्य मतवालों के टीकाओं में नहीं है किंतु प्रतिकूल है। जैसा विरुद्ध भाव टीकाकार का होता है वैसा ही पढने सुनने वालों का भाव हो जाता है। उनके पढने वालोंको उत्तम फल की प्राप्ति नहीं होती। उनमें से कोई भगवद्भक्त होते हुये देखने में नहीं आया किन्तु ऐसा देखा जाता है कि कोई तो ब्राह्मणों को बाद करके दुखी करता है, कोई संत महात्माओं का विश्वास नहीं करता। विचार कर देखते हैं तो जिन लोगों ने थोड़ी संस्कृत या भाषा पढी है, वे थोड़े बहुत भगवत्परायण हैं और जिन्हें विरुद्ध धर्मियों के किये हुये भागवत, रामायण, महाभारत, योग वासिष्ठ आदि अन्य ग्रन्थों के टीके पढे हैं, उनको किसी प्रकार का फल नहीं हुवा। इसलिये विरुद्ध धर्मियों के किये हुये टीके पढने उचित नहीं हैं। यदि बिना टीका पढे हुये कार्य न चलता हो तो हिन्दुओं के किये हुये टीके देखने चाहियें रामायण पर टोडरमल का किया हुआ टीका है, भागवत् पर एक कायस्थ का टीका किया हुआ है, और गीता पर देश वासियों के किये हुये अनेक तिलक हैं।

गङ्गा, यमुना, पुष्कर आदि तीर्थों पर जाना दूसरा तीर्थ सत्संग है। किसी २ का यह कथन है कि तीर्थों के जल को भगवत् ने यह प्रताप दिया है कि जल के दर्शन, स्नान और पान करने से हृदय

पवित्र हो जाता है किसी २ का यह मत है कि भगवद्भक्त किसी नियत समय पर जिस एक स्थान पर एकत्र होते हैं उस स्थान को तीर्थ कहते हैं। भक्तों के संग के प्रभाव और जल के प्रभाव से मनुष्यों के चित्त को उज्वलता प्राप्त होती है क्योंकि भगवद्भक्तों के चरण पड़नेसे जलमें पवित्रता आजाती है, इसलिए शास्त्रों में तीर्थों की अधिक महिमा वर्णन की है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि दोनों ही प्रकार से तीर्थों के सत्संग और यात्रा से मनुष्य पवित्र होकर भगवत् परायण हो जाता है। यहां तक प्रथम प्रकार के सत्संग का निर्णय हुआ, अब दूसरे प्रकार के सत्संग का वर्णन करता हूं। सब शास्त्रों ने जिस सत्संग का वर्णन किया है, उसका तात्पर्य भगवद्भक्तों से है। इस में कुछ भी सन्देह नहीं है कि जो भगवद्भक्तों का सत्संग करते हैं उनको उनका वाञ्छित अर्थ प्राप्त होता है। भगवद्भक्तों का मिलना भगवत् का ही मिलना है। भगवत् का वचन है कि एक क्षणके सत्संग के बराबर स्वर्ग और अपवर्ग का सुख नहीं है। दशम स्कंध में कहा है कि संसार से मुक्त होनेका और अपवर्ग प्राप्ति का केवल सत्संग ही उपाय है। एकादश में भगवत् का वचन है कि मैं योगादि से वश नहीं होता परंतु सत्संग से शीघ्र ही वश हो जाता हूं। पद्म पुराण, स्कंद पुराण, विष्णु पुराण आदि में भी यह ही निश्चय वचन हैं।

संसारामः—महाराज ! अन्य साधनों से भगवद्भक्तों के सत्संग को श्रेष्ठ क्यों माना है ? अन्य साधन भी तो भगवत् की प्राप्ति के कारण हैं ही।

मस्तरामः—भाई ! प्रथम तो भगवत् और शिवजी का वचन है कि जहां भगवद्भक्त रहते हैं, वहां भगवत् स्वयं विराजमान रहते हैं इसलिये जिस पुरुष को भगवत् भक्तों का संग प्राप्त होगा, उसको भगवत् अवश्य मिल जायगें। यह बात प्रचेता और नारद जी के संवाद से सिद्ध होती है। प्रचेता और नारद का संवाद भागवत में प्रसिद्ध है। दूसरे तीर्थ, व्रत, जप, तप, यम नियमादि जो अन्य साधन हैं, वे ऐसे हैं कि उनमें भक्त का मन अनुक्षण नहीं लगता, संसार के स्वाद में चला जाता है और भगवत् भक्तों के सत्संग से भगवत् में अनुक्षण मन लगा रहता है क्योंकि वहां भगवत् चरित्र, कथा, सेवा, भजन कीर्तन आदि के सिवाय अन्य कुछ कार्य नहीं होता इसलिये यदि कभी मन किसी तरफ चला भी जाता है तो फिर भगवत् के संमुख हो जाता है। तीसरे तीर्थादि अन्य साधनों का यह वृत्तांत है कि कहीं भगवद्भक्ति के साधन तो प्राप्त हैं परन्तु साधने वाला भक्त नहीं है, कहीं भक्त साधना करने को तैयार है परन्तु भक्ति की पद्धति नहीं मिलती, कहीं ऐसा संयोग है कि भक्त और पद्धति दोनों एकत्र हैं परंतु संदेह दूर करने वाला कोई नहीं है अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ईर्षा आदि भक्ति पथ के ठगों में से कोई कभी आ जाता है कि पल भर में वर्षों की एकत्र की हुई पूंजी को लूट ले जाता है भक्तों के पास ये ठग आ नहीं सक्ते इसलिये सत्संग से अन्य साधन न्यूनतर हैं क्योंकि ये सब सामग्री के प्राप्त कराने वाले नहीं हैं। भगवद्भक्तों के सत्संग की यह विशेषता है कि वहां समस्त सामग्री एकत्र होती है, जिस २ वस्तु का प्रयोजन होता है, वह ही वस्तु भगवद्भक्तों के पास मिल सक्ती है इसलिये जिस किसी को भगवत् भक्ति

की इच्छा हो और जो संसार समुद्र से पार होना चाहता हो, उसको सत्संग करना चाहिये। यद्यपि सत्संग सर्वत्र प्राप्त है, परंतु हमारी कुतर्क और कुचेष्टा है कि हम को सूझ नहीं पड़ती क्योंकि हम पाप और अवगुण युक्त होने से दूसरे को भी अपने ही समान जानते हैं और उसके सौम्यस्वभाव, भजन आदि पर दृष्टि न करके उसके अवगुण ही देखते हैं यदि शुद्ध स्वभाव की दृष्टि से देखें तो सत्संग सर्वत्र प्राप्त ही है। यदि दुर्भाव, अवगुण और दूषण ही देखना है तब तो कोई जड़ चेतन दूषण रहित नहीं है! वृन्दावन, चित्रकूट, प्रयाग, अयोध्या, काशी, जगन्नाथपुरी, उज्जैन, कांची, हरिद्वार, पुष्कर आदि सैकड़ों स्थानों पर इच्छानुसार सत्संग मिल सक्ता है परन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि सत्संग का यह अर्थ नहीं है कि चलो साहब कोई नये साधु आये हैं उनके दर्शन कर आवें, गये, कुछ भेट धर कर बैठे रहे और फिर घर पर लौट आये। सत्संग उसका नाम है कि भगवद्भक्तों को भगवत् का रूप जान कर उनके वचनों में इतना दृढ़ विश्वाश हो कि कभी भी अविश्वास न हो, ऐसा सत्संग अनुक्षण करना चाहिये। जब तक भगवच्चरणों में पूर्ण स्थिति न हो जाय तब तक नियम पूर्वक, आदर सत्कार सहित, दीर्घकाल तक सत्संग करे! ऐसा करने से पापी से पापी को भी भगवत्प्राप्ति हो सक्ती है। नारद, व्यास, वाल्मीकि, अजामिल, शबरी, बारमुखी, अगस्त, प्रचेता, ध्रुव प्रह्लादादिक हजारों भक्तों की कथाओं से यह बात प्रसिद्ध है कि सत्संग के प्रभाव से कैसे २ पापियों को क्या २ पदवी प्राप्त हो चुकी है, ऐसा सत्संगआज कल बिना प्रयास ही मनुष्य को मिल सक्ता है। जैसे भगवत् की सेवामें भक्तों की निष्ठा होती है, वैसे ही तन मनसे भगवद्भक्तों की सेवा उत्साह पूर्वक करनी चाहिये। भागवत् में भगवत् का वचन है कि-

हे ऋषीश्वर! मेरे भक्त मेरा शरीर ही हैं, वे ही पूज्य हैं, सब उपाय छोड़ कर उन्हीं की सेवा कर! पद्म पुराण में भगवत् का वचन है कि मेरे भक्तों को भोजन कराना मुझको ही भोजन कराना है, मेरे भक्तों की सेवा करना, मेरी ही सेवा है। जैसे मुझको भोजन कराये बिना मेरे भक्त कुछ नहीं खाते इस प्रकार भक्तों को भोजन कराये बिना मैं भी कुछ नहीं खाता! एक स्थान पर भगवत् का वचन है कि मेरे भक्तों के भक्त मेरे ही भक्त हैं। एक स्थल पर भगवत् का वचन है कि गंगा पापों का नाश करती है, चन्द्रमा ताप हरता है और कल्प वृक्ष दरिद्र दूर करता है और मेरे भक्तों के दर्शन से तो क्षणमात्र में तीनों पाप नष्ट हो जाते हैं, तीनों ताप भी दूर हो जाते हैं और परम शान्ति प्राप्त होती है। ऋषीश्वरों का वचन है कि जिस प्रकार संत लोक परलोक से निर्भय और पवित्र कर देते हैं, इस प्रकार तीर्थादि पवित्र नहीं कर सक्ते। इत्यादि सहस्रों वचन शास्त्रों में मिलते हैं। इसलिये जिसको संसार से मुक्त होने की और भगवत् के नित्यानन्द की प्राप्तिकी इच्छा हो, उनको तनसे, मन से और प्राण से भगवद्भक्तों की सेवा करना उचित है! भगवत् की कोई जाति नहीं है इसलिये भगवत् भक्तों की सेवा में जाति पांति का विचार करना उचित नहीं है, चाहे किसी जाति का हो, भगवद्भक्त भगवत् रूप ही है। महाभारत में भगवत् का वचन है कि जो कोई हरि भक्तों में जाति आदि का विभेद

करके उनकी सेवा नहीं करते, वे नास्तिक हैं। साधु सेवा के पन्थ में पांच ठग हैं, एक तो जाति का गर्व कि साधु की जाति को जान कर उसकी सेवा न करे, दूसरा विद्या का गर्व कि बिना पढ़े हुये साधु को छोटा जाने तीसरे ऐश्वर्य का गर्व, क्योंकि ऐश्वर्य के मद में मनुष्य अंधा हो जाता है, भला बुरा सूझ ही नहीं पड़ता चौथा साधु का रूप देख कर सेवा से विमुख होना, पांचवा शरीर का बल। बलके गर्व से भी मनुष्य में विचार नहीं रहता। इन पाचों गर्वों को ताक पर रखकर भगवत् के इन चरित्रों का अनुक्षण स्मरण किया करे कि भगवत् ने स्वयं युधिष्ठिर की रसोई में वाल्मीकि श्वपच को बैठा कर द्रौपदी के हाथ से सेवा कराई, श्रीरघुनन्दन स्वामी ने भीलनी के झूठे बेर खाये, गीद्ध की क्रिया की और निषाद को सखा बनाया।

एक साधु सेवी साधु बीमार था। एक साधु उसके घर पर आया। बीमार साधु ने अपनी स्त्री से साधु के लिये भोजन कराने को कहा। स्त्री ने शिर में दर्द होने का बहाना करके रसोई बनाने को मने कर दिया, संयोग वश उसी समय उसका दामाद आ गया, उसे देख कर स्त्री तुरन्त ही उठ बैठी और दामाद के लिये मोहन भोग आदिक बनाने लगी। साधु सेवी ने तुरन्त ही स्त्री को यह कह कर निकाल दिया कि जब मेरा दामाद आया तब तो शिर दुखने लगा और जब तेरा दामाद आया शिर का दुखना बंद हो गया। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार कामी को स्त्री प्रिया होती है और लोभी को जिस प्रकार धन प्यारा होता है इसी प्रकार भगवद्भक्तों को अपना सगा प्यारा समझ कर सच्चे मन से प्रीति पूर्वक उनकी सेवा करें। जिसको भगवद्भक्तों में प्रीति नहीं है उसका कोई भी मनोरथ सिद्ध नहीं होता, और उनकी सेवा करने से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं। जो भक्तों से विमुख हैं और उनकी निन्दा करते हैं, वे भगवत् धाम में कभी नहीं पहुंच सक्ते। जो भक्तों के साथ शत्रुता करते हैं, अथवा उनको दुःख देते हैं, उनका नाश होता है, वे रसातल को चले जाते हैं। रावण, दुर्योधन, कंस आदि भगवद्भक्तों के साथ वैर करने से ध्वंस को प्राप्त हुये। देवताओं को दुःख देने पर भी भगवत् को हिरण्यकशिपु पर क्रोध न आया परन्तु जब उसने प्रह्लाद भक्त को दुःख दिया तब भगवान् न सह सके। जब हिरण्यकशिपु जैसे बली राक्षस को भगवान् ने तुरन्त ही दंड दिया तब दूसरों की बात ही क्या है। भगवद्भक्तों के द्रोही तीनों लोकों में कष्ट पाते हैं। इसमें दुर्वासा ऋषि का दृष्टांत साक्षी है। एक परम भक्त भगवद्भक्तों से इस प्रकार प्रार्थना करता है:-

हे भगवद्भक्तो! आप परम कृपालु हैं, करुणा सागर हैं, सबके दुःख मिटाते हैं, इस अपराधी पर भी कृपा दृष्टि कीजिये! यदि आप मेरे अपराधों की तरफ देखेंगे तो आपके समदर्शीपने में फरक आजायगा! साधु सजलमेघ के समान होते हैं, शत्रु, मित्र, साधु असाधु सब पर समान दया करते हैं, इस वचन में भी विरोध आजायगा इसलिये मुझ अपराधी पर आपकी कृपा दृष्टि करनी योग्य है, मेरे अपराधों पर दृष्टि देना योग्य नहीं है। कृपा दृष्टि कराने का मेरा थोड़ा अधिकार भी है क्योंकि मैं आपका भाट हूं और कुछ नहीं तो न सही, कृपा दृष्टि तो करनी ही पड़ेगी! यदि आप कहें तू हमारा सच्चा भाट नहीं है, ऊपर से ही

बातें बनाता है, अंतःकरण से स्तुति नहीं करता, तो सब भाट भी ऐसा ही किया करते हैं, फिर भी यजमान उन को विमुख नहीं करते. ऐसे ही आपको भी मुझे विमुख करना अच्छा नहीं है, इसके सिवाय मेरा और आपका एक नाता भी है कि मैं भी श्रीकृष्ण महाराज का घर जाया चेरा हूं इसलिये आप से कृपा दृष्टि मांगने का मेरा अधिकार है। यदि आप कहें कि पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द घन श्रीकृष्ण का दास होकर हम से क्यों याचना करता है और तुझे भय ही किस का है? उसके उत्तर में विनय करता हूं कि स्वामी अवगुणी चेरा हूं, स्वामी की आज्ञानुकूल आचरण नहीं करता, भूल कर भी भगवत् के संमुख नहीं होता, किसी प्रकार से यह दुष्ट भाग्यहीन मन भगवच्चरणों में लग जाय और इस प्रकार ध्यान किया करे कि अयोध्या जी भगवत् का निजधाम है, वहां कल्प वृक्ष है, कल्प वृक्ष के नीच दिव्य मंडप में पुष्पक सिंहासन रक्खा हुआ है, सिंहासन का प्रकाश कोटि सूर्य के समान है, वहां रघुनन्दन स्वामी अंग २ में आभूषण धारण किये हुये वीरासन से विराजमान हैं। वाम भाग श्रीजनकनन्दनी, अप्सरागण वन्दनी, भव भय कन्दनी शोभा देरही हैं। युगल जोड़ी का रूप अपार है और ऐसा मनोहर है कि उनको देखकर लक्ष्मी और विष्णु भी लज्जित हो कर क्षीर सागर में जा छुपे हैं! भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सेवा परायण हैं। चारों वेद, नारद सनकादि ऋषि, और ब्रह्मा आदि देवता स्तुति कर रहे हैं, एक तरफ सुग्रीव विभीषणादि और दूसरी तरफ राज मंत्री खड़े हुये हैं और सामने हनुमान जी हाथ बांधे युगल स्वरूप की शोभा निरख रहे हैं।

अपूर्ण

श्रीपूज्य भोले बाबा अनूपशहर

कहते हैं

(ले० श्री० गंगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण 'विष्णु')

(१)

वेद का आदि जो अद्वैत ज्ञान की कुंजी,
ज्ञान से गम्य हो ओंकार उसे कहते हैं।

(२)

आदि का अन्त का जिसके पता न लगता हो,
चक्र सा घूमता संसार उसे कहते हैं॥

(३)

ध्येय हो ध्यान हो ध्याता हो स्वयं ही अपना,
सृष्टि में व्याप्त हो आधार उसे कहते हैं।

(४)

जिस के जरिये हमें मिल जाय निराकार स्वयं,
चित्त को शान्ति हो साकार उसे कहते हैं॥

(५)

भूमि पर धर्म की रक्षा के लिये आता जो,
चक्र ले हाथ में अवतार उसे कहते हैं।

(६)

जिस में जाका किसी के द्वार पै जाना न पड़े,
दूर दुख द्वन्द हों हरिद्वार उसे कहते हैं।

(७)

पाप में लिप्त हो, हो आंख का बिलकुल अन्धा,
काम का दास हो दुमदार उसे कहते हैं।

(८)

योग से इन्द्रियों की वृत्ति रोक करके हो,
'विष्णु' में लीन तद् आकार उसे कहते हैं॥

जस कछनी तस चाहिय नाचा।

[ले० पूज्य श्री० आत्मानन्द जी सरस्वती]

ह मनुष्य शरीर हमने ईश्वर भक्ति के लिये धारण किया है, प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान अनुपलब्धि और अर्थापत्ति प्रमाणों करके सिद्ध है। युक्ति अनुभव से भी ज्ञात होता है, कि मनुष्य शरीर जीवात्मा का एक स्वांग है, जैसे बहरूपिया यानी खेल करने वाला वेष बदल कर वेषके अनुसार ही बर्ताव करके तद अनुसार ही इनाम पाता है। तैसे ही जीवात्मा ने मनुष्य शरीर का स्वांग धारण किया है, मनुष्य शरीर के अनुसार ही बर्ताव करेगा तो मोक्षरूपी इनाम पावेगा। और विपरीत व्यवहार से कुछ भी हाथ नहीं आवेगा यानी नरकही पावेगा यह मनुष्य शरीर भक्ति करने का स्वांग ईश्वर को प्रसन्न करने को जीवात्मा ने धारण किया है। और यह निश्चय कर लिया है कि मैं ऐसा स्वांग पूरा उतारूंगा, कि ईश्वर जगत्पिता से अवश्य मोक्ष रूप इनाम पाऊंगा। यह ही बात नीचेके दो दृष्टान्तों से स्पष्ट करके दिखाते हैं।

कुछ चोर एक गांव में रहते थे, चोरी उनका पेशा था, परंतु साधु सेवा भी करते थे। एक विरक्त महात्मा जंगल में रहते थे, चोर भी वहां आया जाया करते थे। और महात्मा जी से प्राणायाम क्रिया सीखते थे, कुछ काल बाद जब सीख कर निपुण होगये, तब गुरुजी से हाथ जोड़ कर कहने लगे- 'श्रीमहाराज! गुरु दक्षिणा लीजिये' यह कह कर बहुत सा द्रव्य श्रीगुरुजी के सामने रक्खा। श्रीगुरु जी द्रव्यको देख कर बोले 'हे शिष्यो। तुम कौन हो? कि इतना द्रव्य मुझको गुरु दक्षिणा में देते हो'? शिष्य कांपते हुये कहने लगे 'श्रीमहाराज! अपराध क्षमा कीजिये, हमने अपना पेशा छिपा कर आपसे प्राणायाम सीख लिया है, हम लोग चोर हैं, और हमारा पेशा चोरी है हम आपकी शरण हैं रक्षा कीजिये! रक्षा कीजिये!! रक्षा कीजिये'!!!

विरक्त महात्मा जी कहने लगे:- भयभीत मत हो। मैं तुमको शाप नहीं दूंगा, जो कुछ हुआ सो हुआ, तुम लोग सावधान हो! और यह धन अपना लेजाओ! क्योंकि मैं विरक्त हूं धनका क्या करूंगा। तुम लोग अपने काम में लाना। चोर कहने लगे 'श्री महाराज! गुरु दक्षिणा के बिना कोई भी विद्या सफल नहीं होती ऐसा हमने संतों से सुना है! महात्माजी ने यह सुन कर विचार किया, चोर ठीक कहते हैं शास्त्रों में भी ऐसा ही लिखा है, इनसे कुछ दक्षिणा भी लेनी चाहिये, ऐसा विचार कर चोरों से कहने लगे:-कि द्रव्य तो अपना लौटा ले जाओ, हम तुम से एक वचन की दक्षिणा लेते हैं, कि जिस समय तुम लोग जैसा स्वांग, बनाओ उसको पूरा उतारना यानी ठीक २ करना, यह ही तुम्हारी दक्षिणा है। यह सुन चोरों ने कहा:- आपकी आज्ञा शिरोधार्य हो'। कुछ काल पीछे चोरों ने राजा के यहां चोरी की और कीमती बहु मूल्य रत्न चोरी कर एक २ गठरी बांध कर निकल

गये ज्यों ही पहरेदारों को पता लगा, यहां तक कि राजा को भी पता लग गया कि चोर बहुत माल ले गये। राजा ने खोजी को बुला कर साथ लेकर फौज को आज्ञा की! शीघ्र चोरों का अन्वेषण करना चाहिये। राजा, फौज पुलिस, व खोजी सबने मिलकर चोरों का पीछा किया। चोरों ने देखा सेना पीछा करती हुई चली आरही है, झट गठरियों को एक तालाब में फैंक दिया और आगे भागने लगे, परंतु सेना ने पीछा नहीं छोड़ा। चोर यह देख कि किसी तरह भागने से नहीं बचेंगे, तो श्मशान में जहां महामारी के मरे हुये बहुत से मुर्दे पड़े थे, उनमें घुस गये, और मुर्दे की भांति होकर पड़ गये।

इधर राजा आगे चोरों की खोज न देखकर खोजी से कहने लगा-'चोर कहां हैं'? खोजी ने अपना संयम किया, संयम करके खोजी कहने लगा, 'अन्नदाता! चोर मुर्दों में ही घुस गये हैं, आगे नहीं गये हैं'। राजा ने सब मुर्दों को दिखवाया सब मुर्दे ही ज्ञात हुये। राजा खोजी से कहने लगा-'ये सब मुर्दे हैं, चोर कहां है? खोजी ने फिर विचार किया तो चोरों की खोज मुर्दों में ही ठीक बैठी। राजा से कहने लगा, 'महाराज! खोज तो मुर्दों में ही हैं मेरी खोज कच्ची नहीं होसक्ती'। राजा कहने लगा क्या करना चाहिये'? खोजी बोला-'श्रीमहाराज! सब मुर्दों को खड़ा करके छोड़ दिया जाय मुर्दे २ गिर पड़ेंगे, चोर नहीं गिर सक्ते। राजा और समस्त कर्मचारी प्रसन्न हुये। खोजी की आज्ञानुसार मुर्दे खड़े करके छोड़े गये, चोरभी मुर्दों की भान्ति ही गिर पड़े। ऐसा सब देखकर कहने लगे चोर मुर्दोंमें नहीं है, चलो आगे देखें, नहीं तो दूर निकल जायेंगे, फिर मिलना भी असंभव हो जायगा। ऐसा सुन फिर खोजी ने संयम किया और कहने लगा 'आगे मत जाओ, चोर इन्हीं मुर्दों में है। तब राजा ने कहा तो क्या करना चाहिये'? खोजी बोला-'इन सबके पैर काटे जायें! खोजी की आज्ञानुसार पैर काटे गये। परंतु चोर टस से मस भी नहीं हुये! फिर खोजी ने कहा 'इनके हाथ काटे जायं'? खोजी की आज्ञानुसार हाथ भी काटे गये, परंतु चोरों ने किंचित् भी चेष्टा नहीं की। तब तो सब लोग अचंभित हुये और कहने लगे 'इनके शिर और काटे जायं'। इतना सुन खोजी बोला शिर काट दिये जायेंगे तो मेरी खोज का क्या विश्वास होगा, और यह विद्या ही झूठी हो जायगी, और इस विद्या के नाश करने का अपराधी मैं ही हूंगा। इसलिये शिर न काटे जायें'? राजा कहने लगा-'तो क्या करना चाहिये? खोजी बोला:—

'श्रीमहाराज! आप अब चोरों की प्रार्थना करिये कि हम आपके दर्शन करना चाहते हैं, आप भय न करें, हम आपको कोई दंड नहीं देंगे। किंतु दंड के बदले इनाम देंगे'। राजाने ऐसा ही किया, परंतु चोर न बोले, राजा ने फिर त्रिवाचा से कहा 'हम क्षत्रिय हैं, झूठ नहीं बोलते, चाहे प्राण चला जावे, आप बोलो, मैं आपको आधा राज्य दूंगा'। इतना सुन चोर झट बैठ गये और हंसने लगे। राजा और कर्म चारी बड़े आश्चर्य में हुये! राजा ने चोरों से पूछा 'आप इतनी दुर्दशा होने पर भी कोई प्रकार की चेष्टा को प्राप्त नहीं हुये, इसका क्या कारण है'? चोर बोले:-श्रीमहाराज! हमको गुरू का उपदेश है, कि जिस स्वांगको बनाओ, उस को पूरा करना। सो हे राजन्। हमने मुर्दोंका स्वांग धारण किया, हमको मुर्दोंका स्वांग पूरा करना ही था।

इसमें क्या संदेह है'। राजा बोला-'जीवका स्वभाव है, दुःख नहीं सह सक्ता, आपने असह्य दुःखको कैसे सहन किया'? चोर बोले-'हे राजन्! हमने गुरुद्वारा प्राणायाम सीखा है, प्राणों को ब्रह्मांड में चढाने से शरीर को कोई प्रकार का सुख दुःख प्रतीत नहीं होता'। राजा ने अपने वचनानुसार प्रसन्नता पूर्वक आधा राज्य दिया, और चोरों की प्रशंसा की।

पाठको! यही जीवात्मा चोर है क्योंकि आत्म रूपी धन चुरा कर, और उसी सत्ता से अपने को पृथक् मान कर जीव कहलाता है। जब सद्गुरु विरक्त रूपी ईश्वर की आज्ञानुसार मनुष्य शरीर रूपी अपने अभिलषित स्वांग का पूरा २ ठीक बर्ताव करता है। जैसे मुर्दे का स्वांग चोरों ने ठीक २ किया इसी प्रकार जीवात्मा रूपी चोर ने अपने ईश्वर की भक्ति के लिये मनुष्य रूपी स्वांग धारण किया है। यदि मनुष्य शरीर रूपी स्वांग से ईश्वर की भक्ति को भौतिक विघ्नों के आने पर भी नहीं छोड़ेगा तो पूर्ण भक्ति के पद को प्राप्त होगा। जैसे चोर शरीर कटने रूप विघ्न से विचलित नहीं हुये, और अपने गुरु को दिये हुए वचन पूरे किये तब राज्य के अधिकारी हुये, इसी प्रकार यह जीवात्मा गुरु रूपी ईश्वर को वचन दे आया है कि तेरी भक्ति मनुष्य शरीर रूप स्वांग धारण करके करूंगा। इसलिये प्रिय पाठक! इस जीवात्मा को अपने वचन का पूरा २ पालन करना चाहिये, अपना वचन पालन करना ही इस जीवात्मा का मुख्य कर्तव्य है। यदि अपने वचनानुसार ईश्वर की आज्ञा से विरुद्ध चले तो अवश्य ही दंड का भागी होगा। (जैसे अदालतों में हलफ दरोगी का इल्जाम लगता है) जैसे लोक में अपने पिता की आज्ञा का उलंघन करता है वह कुपात्र ही कहलाता है। तैसे ही जगत् पिता की आज्ञा का जो उलंघन करेगा तो वह महाकुपात्र ही कहलावेगा इसमें संदेह ही क्या है? इसलिये तन मन धन से ईश्वर की आज्ञा का पालन करना चाहिये। क्योंकि मनुष्य शरीर रूपी स्वांग भक्ति के लिये ही धारण किया है। इसमें शास्त्र, वेद, पुराण, महज्जन सर्व साक्षी हैं, कि मनुष्य शरीर सिवाय ईश्वर भक्ति के और किसी काम के लिये नहीं है। इसलिये जैसी कहनी काही है, वैसा ही नाच नाचना चाहिये। यदि दिव्य भोगों के लिये ही यह कहनी होती तो मनुष्य शरीर की कहनी नहीं होती, देवताओं की कहनी होती। यदि अत्यंत दुःख भोगने को ही यह कहनी होती तो तिर्यक् योनि कीट पतंगादि की कहनी होती, मनुष्य शरीर की कहनी नहीं होती। इससे सिद्ध हुआ कि यह मनुष्य शरीर अति सुख दुःख से रहित है यानी समानता वाला है, ईश्वर भक्ति समानता वाले से ही हो सक्ती है, विषमता वाले से नहीं। शास्त्र कहते हैं कि अति दरिद्री, अति धनवान्, अति रोगी, अति बलवान्, अति पंडित, अति श्रीमान्, अति विद्वान् और अति मूर्ख इनको ईश्वर भक्ति (आत्म ज्ञान) नहीं होती। और मनुष्य शरीर ही समानता वाला है कोटि भांति कर निश्चय करने पर यह ही निश्चय होता है, कि मनुष्य शरीर ईश्वर भक्ति के लिये ही है, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। इसलिये बारंबार विचार कर ईश्वर भक्ति करनी चाहिये। इसी विषय में दूसरा दृष्टांत सुनिये!

एक बहुरूपिया वेष बदल बदल कर राजा को प्रसन्न किया करता था। वेष भी ऐसा बनाता

था कि राजा बहरूपिये को अच्छे प्रकार से पहिचान भी नहीं सक्ता था। एक दिन राजा ने कहा:-'भाई हमको यदि धोका देवे, तो तेरा स्वांग बनाना स्वीकार करेंगे। बहरूपिया राजा की बात सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ, और 'श्रीमहाराज ! आपको धोका ही दूंगा'। ऐसा कह कर चल दिया।

बहरूपिया ने बड़ी २ जटा शिर पर ऐसी जमाई कि कोई नकली नहीं जान सके, नग्न होकर अवधूत का रूप धारण करके शहर से कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गया। और शरीर वाणी की चेष्टा से रहित कुछ काल तक रहा। यह देख शहर के मनुष्य आने लगे, और बड़े २ सामान भेट करने लगे परंतु अवधूत जी किसीके सामानकी तरफ देखते भी नहीं थे। यह वृतांत सारे शहर में फैल गया, यहां तक कि राजा पर भी खबर पहुंची, कि एक त्यागी महात्मा आये हैं। यह सुनकर राजा भी उत्सुक हुआ कि महात्माजी से भेट करनी चाहिये। राजा बहुत सा द्रव्य लेकर महात्माजी के पास पहुंचा और दंडवत् कर भेट आगे रख कर बैठ गया। अवधूत जी ने किसी प्रकार की चेष्टा नहीं की, जब राजा उठ कर चलने लगा तो अवधूत जी, अवधूत का वेष बदल अपने कपड़े पहिन राजा के सन्मुख जा झुक कर प्रणाम किया, और कहने लगा:-'श्रीमहाराज ! अन्नदाता ! कहिये, कैसा धोका दिया ? अब मुझको इनाम मिलनी चाहिये।

राजा देख कर अचंभित होकर कहने लगा' तुझको इतना द्रव्य हम भेट में देते थे वह क्यों नहीं लिया ? अब इनाम मांगता है, उस से ज्यादा अब इनाम तो नहीं दिया जावेगा। बहरूपिया सुन कर बोला:- श्रीमहाराज ! मैंने त्यागी अवधूत का स्वांग बनाया था, यदि मैं द्रव्य ले लेता तो त्याग पने में धब्बा लगता और त्यागियों की निन्दा कराने का पात्र होता, जैसा स्वांग बनाया था वैसा ठीक २ ही उतारना चाहिये। श्रीमहाराज ! अब जो कुछ आप देंगे उसी में मैं सर्व प्रकार से संतुष्ट हूं'। राजा यह सुन बहुत प्रसन्न हुआ और बहरूपिये को कई गांव इनाम दिये जिन को पाकर बहरूपिया अब भी बैठा आनंद से सुख चैन कर रहा है।

पाठको ! बहरूपिया रूपी जीवात्मा है, और राजा रूपी ईश्वर है, महात्मा रूपी स्वांग मनुष्य शरीर है मनुष्य शरीर रूपी स्वांग ईश्वर भक्ति करने के लिये धारण किया है। जब जीव ईश्वर भक्ति पूरी करता है तब राजा रूपी ईश्वर प्रसन्न होकर गांव रूपी (जीवन मुक्ति) अपना देश प्रदान करता है जिसमें जीवात्मा अमर होकर निवास करता है। संशय विपर्य्य से रहित होता है, जिसको पाकर फिर नहीं लौटना।

पाठको ! इसी को श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'जस कछनी तस चाहिय नाचा' करके कथन करा है। मनुष्य शरीर ही ईश्वर भक्ति की कछनी है। तो मित्रगणो ! हमको वैसा ही नाच नाचना चाहिये। जैसे बहरूपिये ने बहुत से धनको तृष्णा न करके अल्प ही में संतोष माना, उसका परिणाम यह हुआ कि निष्कंटक गांव रूपी इनाम पाया। इसी प्रकार हम संसार की आसक्ति त्याग कर ईश्वर भक्ति रूपी स्वांग को बहुरूपिये के सदृश पूरा करेंगे तो निःसंदेह ईश्वर का लोक जो अमर पद है, पावेंगे। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। सारांश यह है कि लोक वासना, देह वासना, शास्त्र वासना

तीनों का मग तृण के सदृश त्याग करके मन, कर्म वचन से ईश्वर भक्ति में तत्पर होना चाहिये।

इसी प्रकार से भक्ति का भाव नीचे के छन्दों में दिखलाया है।

भक्ति भाव

(हरिगीत छन्द)

उत्तम मनुज तनु पाय भगवत भक्ति मित्रो ! कीजिये ।
नाना विषय को छोड़िये, नहिं चित्त उनमें दीजिये ॥
यह स्वांग धारा भक्ति का, है वेद गुरु कहते सभी ।
तन मन लगा कर भक्ति कीजे, काम पूरा हो तभी ॥१॥
देखें सुनें सब लोक में आशा विषय की छूटती ।
वह ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय की त्रिपुटी तभी है टूटती ॥
अपना पना जो मेटते वे ईश से हैं भेंटते ।
है ईश उनको देखता वे ईश को हैं देखते ॥ २ ॥
रे मन ! सदा तू भक्ति कर नाता जगत का तोड़ दे ।
विष जान विषयों को सदा आसक्ति उनकी छोड़ दे ॥
माता, पिता, सुत दार कोई, काम में नहि आयगा ।
आत्मानंद शोकादि तेरे, ईश एक मिटायगा ॥ ३ ॥

नीचे की कुंडलिया भी यही दर्शाती है।

कुण्डलिया।

ईश्वर सेवा कीजिये, सब कारज बन जाय ।
दुविधा कोई ना रहै, राग द्वेष जर जाय ॥
राग द्वेष जर जाय, सुनो हो मेरे मिंता ।
आवागमन मिटाय, लेश नहि व्यापै चिंता ॥
आत्मानंद विचार, भोग जग के हैं नश्वर ।
छोड़ विषय की आश, रात दिन भजरे ईश्वर ॥

छप्पय

त्रिविधि दुःख हों दूर, भक्ति ईश्वर की कीजै ।
ज्ञान होय भर पूर, देह मन हरि को दीजै ॥
लोक और परलोक, कार्य बन जावै दोऊ ।
जन्म मरण मिट जाय, शोक भय होय न कोऊ ॥
ब्रह्म माहिं तल्लीन हो, लौट न जग में आवगा ।
आत्मानंद समुद्र में, डुबकी नित्य लगायगा ॥

आओ।

[ले० श्री मदनगोपाल सिंहल मेरठ]

सुध दास की लेने को घनश्याम ज़रा आओ ।
बिन दर्श तरसता हूँ सूरत मुझे दिखलाओ ॥
कुछ दिनके लिये भगवन् इस तनको बना मधुवन ।
मम भक्ति की राधा के संग रास मचा जाओ ॥
मन मोर मेरा मोहन नाचेगा तुझे लख कर ।
घनश्याम श्याम बनकर हियके गगन में छाओ ॥
मुख चन्द्र लखूंगा मैं तेरा चकोर बन कर ।
चातक बनूं दरशन की स्वाती को तो टपकाओ ॥
इच्छा है यही तुझ को ही सब में निहारूं मैं ।
तुम बन के 'मदन' ज्योति नैनों में समा जाओ ॥

श्रीराम नाम महिमा

[ले० श्री गंगानाथजी उपाध्याय]

यह सकल विश्व ब्रह्माण्ड एक दिन अवश्य नाश को प्राप्त होने वाला है एक परमात्मा अविनाशी है, परमात्मा जीव की अविद्या को हर लेता है इस कारण ही उसका नाम हरि है। वह ही सच्चिदानन्दघन

परमात्मा सकल चराचर में व्याप्त है और सकल जीव मात्र के हृदय में विराजमान होकर सब जीवों को उनके कर्मानुसार चेष्टा कर रहा है वह ही परमात्मा सकल चराचर में रम रहा है इसलिये उसका नाम राम है। यह ही सब से प्रधान है। यह निराकार परम पुरुष सकल वेद वेदान्तों के द्वारा जानने में आने वाला परमात्मा, सर्व नियन्ता सर्व कर्त्ता, सर्व प्रभु, सच्चिदानन्द अद्वितीय परमात्मा का परम पावन मनोहर नामोच्चारण कीर्तन करने से और विश्व के सकल पदार्थों में उसकी प्राप्ति अर्थात् वह विश्व में व्यापक है विश्व हर समय उस में दृढ़ता से बंधा हुआ है और मैं उस विश्वव्यापी परमात्मा का एक अंश हूं जगत् के सब ही पदार्थ उसके अंश है ऐसा निश्चय करके उस परमात्मा के नाम को परमात्मा से अभेद भाव से चिन्तवन करना विश्व में सर्वत्र उसकी ही विभूति देखना तथा उसके परम पुनीत सुमनोहर नामोच्चारण और कीर्तन करने से उस परमात्मा का साक्षात्कार होता है। उस परमात्मा के साक्षात्कार मात्र से ही जीवको परम पद की प्राप्ति होती है।

जो परम ऐश्वर्य वाला परमेश्वर ब्रह्मादि देवताओं का भी स्वामी है, सकल ब्रह्माण्ड जिसकी अनन्त सत्ता के आधार से ठहरा हुआ है क्या दो चरण वाले मनुष्यादि, क्या पक्षि आदि और क्या चार चरण वाले पशु आदि सब ही प्राणी जिस सर्व नियन्ता के अपूर्व नियम में बन्धे हुए हैं, अनन्त शक्ति शाली अचिन्त्य प्रभाव वाले जगत् के सकल जीव ही जिसकी आज्ञा में हैं, आनन्द जिसकी मूर्ति है, सत् जिसका स्वभाव है, और ज्योति अर्थात् विश्व प्रकाशिका कान्ति जिस की सत्ता है उसको जो भाग्यशाली मनुष्य शरीर मन वाणी से अपना सर्वस्व अर्पण करके उसका दास भाव स्वीकार कर निरन्तर उस परमात्मा के नाम का स्मरण कीर्तन करता हुआ उसके ध्यानमें ही मग्न रहता है जगत् में उसके समान सौभाग्यवान कौन है ? जिसके अक्षय अनन्त भण्डार में किसी भी बात की कमी नहीं है उसको सर्वस्व समर्पण करके जो उस एक के मात्र शरण है उस महा सौभाग्यवान् पुरुष को दुःख ही क्या रहे, जिस महोच्च पुरुष से निरन्तर अप्रमेय आनन्द का झरना बहता रहता है उस सदा आनन्द निकेतन के चरणों में जो पुरुष मन और प्राणों को बलिदान करदे तो उस पुरुष को कमी ही क्या रहे ? आनन्द के लिये ही जगत् तड़फड़ाता फिरता है केवल आनन्द के लिये ही माता पुत्र को चाहती है, केवल आनन्द के लिये ही पुरुष स्त्री की चाहना करता है केवल मनुष्य ही नहीं पशु पक्षी आदि की योनियों में भी निरन्तर आनन्द का ही प्रवाह बहता है। इस कारण जब आनन्द ही जीवन का पाने योग्य प्रधान पदार्थ है तब जिसके आश्रित होने से अपने इच्छित उस थोड़े आनन्द की अपेक्षा हम करोड़ों गुणा अधिक आनन्द पा सकते हैं, जिस करुणामयकी दया रूपी कल्पलता की छाया में संसार ताप से झुलसे हुए शरीर को विश्राम दे सकने पर हृदय की असह्य यातना चिरकाल के लिये मिटा सकते हैं, हाय ! ऐसे महिमा वाले परम पुरुष परमात्मा के चरणों में यदि आश्रय पाने की प्रार्थना न कर केवल संसार के अनेक अवर्णनीय दुःख प्रवाह में ही बहते रहें तो हमारे जैसा ढीठ आत्मद्रोही दूसरा और कौन होगा ? कोई नहीं।

हम अपनी जिस दशा को मृत्यु कहते हैं वह वास्तव में मृत्यु नहीं है जो अविद्या से नहीं छूटता है वह जीवित भी मृतक के समान ही है, श्रुतिमें इस महामोह गाढ़ तमका नामही मृत्यु कहा है श्रुति कहती है:- 'मृत्युर्वैतमः' तम ही मृत्यु है इस तमके विनाश का नाम ही मृत्यु विनाश है। मायाविनी अविद्या के महान्धकार में अपने स्वरूपको भूलकर जीव हृदय में घबड़ाया हुआ वासनाओं को पूरी करने लिये लंबी २ श्वासें लेता हुआ इधर उधर घूमता फिरता है, अविद्यान्धकार से उत्पन्न हुई इस वासना को नष्ट करने का एक मात्र उपाय जगदीश्वर का चिन्तवन यानी भगवान् में परम प्रीति करना है।

वास्तव में जिन में मग्न होकर हम लोग अमर समान मानते हैं उन माता, पिता, स्त्री, पुत्र, भ्राता, भगनी आदि कुटुम्बियों का समागम चिर काल नहीं रहेगा किन्तु जिस प्रकार चारों ओर के बटोही रात्री के समय कुछ काल एक स्थान पर ठहर कर प्रातःकाल होते ही अपने २ मार्ग को चले जाते हैं इसी प्रकार ये माता पितादि कुटुम्ब अनेकों जन्मों में करे हुये कर्मों के अनुसार कुछ काल इकट्ठे होकर (रह कर) कर्म फल रूप रात्रि के व्यतीत होते ही अपने २ मार्ग को चले जायंगे, जो चला जाता है वह फिर लौट कर नहीं आता ऐसे किसी समय अवश्य छूट जाने वाले कुटुम्बियों में से आसक्ति हटा कर सदा अन्तर्यामी परमात्मा में मग्न होकर उस प्रभु के परम पावन नामका जप परम प्रेम भक्ति के साथ नित्य निरन्तर नामी का अभेद भाव से ध्यान करना इसी से सकल कामना की सिद्धि होती है यह ही मनुष्य जन्म का आवश्यक कर्तव्य है। अतएव सब भक्त वृन्दों से प्रार्थना है कि परिणाम में दुःख देने वाले क्षणिक विषय सुख से मुख को मोड़ कर नित्य सुख स्वरूप परमेश्वर में चित्त को लगा कर परमात्मा के मोक्ष प्रदायक मंगल मय नामों को सदा प्रेम पूर्वक जप करें।

श्रीराम नाम की महिमा नीचे श्लोकों में है वह पहले नामी के चरण कमलों में समर्पण करके फिर नाम प्रेमियों के करकमलों में समर्पण करते हैं।

आदि पुराण में अर्जुन के प्रति भगवद्वाक्य

गायन्ति राम नामानि सततं ये जना भुवि।
नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यः पुनः पुनः॥

पृथिवी में जो पुरुष राम के नामों को सतत गाते हैं, उनके लिये नमस्कार है, नमस्कार है, बारम्बार नमस्कार है।

ते नाम गाथा विचरन्ति भूमौ गीत्वा सदाते पुरुषाः सुधन्याः
ये नाम गाथा पर तत्त्व निष्ठास्ते धन्य धन्या भुवि कृत्य पुण्या

उनके नामको गाते हुये जो पुरुष पृथिवी पर विचरते हैं वे धन्य हैं! जो नाम गाते हुये परम तत्त्व की निष्ठा वाले हैं पृथिवी पर वे पुण्यात्मा धन्य से भी धन्य हैं।

राम नामैव नामैव राम नामैव केवलम्।
गतिस्तेषां गतिस्तेषां गतिस्तेषां सुनिश्चितम्॥ ३॥

राम नाम ही है, नाम ही राम है राम नामही केवल उनकी गति है, राम नामही उनकी गति है, और राम नाम ही निश्चय उनकी गति है।

नामैव परमा मुक्तिर्नामैव परमा मतिः।
नामैव परमा प्रीति र्नामैव परमास्मृतिः॥

नाम ही परम मुक्ति है, नाम ही परम मति है, नामही परम प्रीति है और नामही परमस्मृति है।

नामैव परमा भक्ति नामैव परमा धृतिः ।
नामैव परमा शान्तिर्नामैव परमा गतिः ॥

नाम ही परम भक्ति है, नाम ही परम धृति है, नाम ही परम शान्ति है और नाम ही परम गति है।

नामैव परमं पुण्यं नामैव परमं तपः ।
नामैव परमो धर्मो नामैव परमो गुरुः ॥

नाम ही जन्तुओं की शरण है, नाम ही जीवों का गुरु है, नाम ही जीवों का बीज है और नाम ही परम पावन है।

नामैव परमं ज्ञानं नामैव चाखिलं जगत् ।
नामैव जीवनं जन्तोर्नामैव विपुलं धनम् ॥

नाम ही परम पुण्य है, नाम ही परम तप है, नामही परम धर्म है और नाम ही परम गुरु है।

नामैव जगतां सत्यं नामैव जगतां प्रियम् ।
नामैव जगतां ध्यानं नामैव जगतां परम् ॥

नाम ही परम ज्ञान है, नाम ही सम्पूर्ण जगत् है नाम ही जन्तुओं का जीवन है और नाम प्रचुर धन है।

नामैव शरणं जन्तो नामैव जगतां गुरुः ।
नामैव जगतां बीजं नामैव पावनं परम् ॥

नाम ही जगत सत्य है, नाम ही जगत् वालों का प्रिय है, नाम ही जगत् वालों का ध्यान है और नामाही जगत् वालों का परम है।

नामैव जगतां बन्धुर्नामैव जगतां प्रभुः ।
नामैव जगतां जन्म नामैव सचराचरम् ॥

नाम ही जगत् वालों का बंधु है नाम ही जगत् वालों का प्रभु है, नाम ही जगत् वालों का जन्म है और नाम ही चर और अचर है।

नामैव धार्यते विश्वं नामैव पाल्यते जगत् ।
नामैव नीयते नाम नामैव भुज्यते फलम् ॥

नाम ही विश्व को धारण करता है नाम ही जगत् को पालता है, नाम ही नाम लेता है और नामही फल भोगता है।

नामैव चांग शास्त्राणां तात्पर्यार्थं परं मतम् ।
नामैव वेदसारांशं सिद्धान्तं सर्वदा शिवम् ॥

नाम ही शास्त्रों के तात्पर्य के अर्थ परम अंग माना गया है, नाम ही वेदों का सारांश सिद्धान्त सर्वदा शिव है।

नामैव नीयते मेधा परे ब्रह्मणि निश्चला ।
नाम्नैव चंचलं चित्तं मनस्तस्मिन्नर्प्यते ॥

परब्रह्म में नाम से ही बुद्धि स्थिर की जाती है नाम से ही चंचल चित्त और मन परब्रह्म में लीन किया जाता है।

श्रीराम स्मरणेनैव नरोयाति परां गतिम् ।
सत्यं सत्यं सदा सत्यं न जाने नामजं फलम् ॥

श्रीराम स्मरण करने से मनुष्य परम गति को प्राप्त कर सकता है, सत्य है, सत्य है, सदा सत्य है, मैं नाम से उत्पन्न होने वाले फल को नहीं जानता।

राम नाम प्रभावोयं सर्वोत्तम उदाहृतः ।
समासेन तथा पार्थ वक्ष्येहं तव हेतवे ॥

राम का नाम यह सर्वोत्तम, प्रभाव जैसा कहा गया है वैसा ही हे पार्थ ! तेरे कल्याण के हेतु संक्षेप से कहूंगा।

———

गुरुवन्दना

[ले० श्री० प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी]

जय जय जय गुरु देव गुसाईं ॥ टेक ॥
जय आनन्द घन रूप छवि अनुपम,
अप्रमेय गुणनिधि तोहि गाईं ॥ १ ॥
जय सुख मूल शूल भव के सब,
मान देत तव दूर पराईं ॥ २ ॥
जय जीवन धन "प्रभु" के स्वामी,
चरण कमल पर बलि बलि जाईं ॥ ३ ॥

पत्र पुष्प

सप्रेम राम राम ! आपके कई पत्र मिले, तार मिले परन्तु मैं नहीं आ सका। इससे यह न समझियेगा कि मेरा आपसे प्रेम कम है, यद्यपि मैं परम प्रेमी होने का दावा भी नहीं करता। बहुत बार ऐसा भी होता है कि प्रेमी समीप नहीं आसकता। आना नहीं चाहता। उसे दूर रहने में ही प्रेम का विकाश प्रतीत होता है। अधिक मैं कुछ भी नहीं लिख सकता। यदि आप इस बातका कुछ भी विश्वास रखते हों कि मैं अपने मन में आपके प्रति जरासा भी प्रेम रखता हूं तो आप मुझे अपने पास ही समझिये। शरीर की अपेक्षा मन से मैं आपके पास अधिक हूं जो शायद शरीर से पास रहने पर नहीं रह सकता।

आपके ..... का पत्र ..... के आया था। इसमें ..... की दवा से आपकी तबीयत में कुछ सुधार लिखा सो बड़े आनन्द की बात है। शारीरिक व्याधि मिटना आनन्द ही है परन्तु मेरी समझ से आपको परमात्मा पर भरोसा करके निश्चिन्त रहना चाहिये।

जीवन मरण चरण के चाकर चित्त भावना लीन।
हरि चरणाश्रित निर्भय निर्भर प्रेमोदधि में लीन॥

जो अपने को प्रभु के चरणों में समर्पित कर देता है उसमें प्रधानतया दो बातें आ जाती हैं (१) "निर्भयता" और (२) "निश्चिन्तता"! मृत्यु की विभीषिका भी उसे नहीं डरा सकती और स्वर्ग, नर्क, सुगति, दुर्गति या मोक्ष की चिन्ता उसे नहीं रहती। "योगक्षेमं वहाम्यहम्" भगवान् की इस अमर घोषणा को वह निरन्तर सुना करता है और पद पद पर उसका प्रमाण भी पाता है। ईश्वर की सत्तासे बाहर कोई कहीं नहीं जासकता। उसकी सत्ता से बाहर देशही नहीं है तो फिर किसी भी देशमें और किसीभी वेषमें क्यों न रहें चिन्ता की कौनसी बात है। वह प्रभु जिस वेषमें हमें रखना चाहे उसमें प्रसन्नता से रहना ही हमारा कर्तव्य है। उसकी इच्छा के विरुद्ध हम किसी वेष विशेष के लिये आग्रह ही क्यों करें। ऐसा आग्रह करना तो उस मंगलमय की मंगल इच्छा पर अपनी समझ का बांध बांधने जाना है। उस परम प्रेमी के प्रेम विधान पर सन्देह करना है। हम जो उसके नित्य सहचर हैं उसीके दिये हुये किसी खास देश वेषको थोड़े दिनोंके लिए पाकर उसमें तद्रूप बन असली बात को भूल रहे हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। यह देश वेष तो उसके किसी कार्य के लिये हमें मिलता है। यह बपौती थोड़े ही

हैं। नित्य थोड़े ही है। उस ने जिस कार्य के लिये हमें निमित्त बनाया है उसके पूरा होते ही वह अपने दूसरे कामके लिये हमको किसी दूसरे देश, वेषमें बदल सकता है। इसमें शोक का प्रसंग ही क्या है? जब हम उसके हैं तब वह जो कुछ करे उसी में हमारा मंगल है। यह शरीर तो हमारा रूप नहीं है। यह तो उसका दिया हुआ वेष है। यह नहीं, दूसरा सही। इसमें ममत्व क्यों? इसी के कल्पित सम्बन्धियों में अपनापन कैसा? उचित तो यही है कि अपनी इस भूल को मिटा उसी को आत्म-समर्पण करदें। अपने को सम्पूर्ण रूप से उसके चरणों में डाल दें, फिर वह जो कुछ करे सो अच्छा। लम्बी बीमारी प्रदान करके तो उसने मानो अपना प्रिय दूत हमारे पास भेज दिया है कि तुम्हारा यहां का काम हो चुका, अब तुम्हें जल्दी बुला लिया जायगा। प्रभु का-प्रियतमका पूततो हमारी प्रिय सामग्री है। उसका स्वागत करना चाहिये। आहा! उसने बड़ी कृपा की जो प्रियतम का सन्देश सुनाया। प्रियतम मुझे याद करते हैं तभी तो इतने पहले से अपना दूत भेज दिया है। मैं प्रियतम को भूल रहा था, उन्होंने दूत भेज कर प्रेम की स्मृति ताजी करदी। अब तो उन्हें कैसे भूलूं। भाई दूत! समीप रहो और सर्वदा अपनी समीपता से उस प्यारे की याद दिलाते रहो। तुमने बड़ी कृपा की।

शरीर तो चाहे जब जा सकता है। हट्टे कट्टे आदमी हार्ट फेल से मर जाते हैं। वे बिचारे एक प्रकार से इस दूत के सन्देश सुख से वञ्चित रह जाते हैं। मान लीजिये कोई आदमी बिना ही बीमारी के पल भर में चल बसा और चलते समय भगवान् का स्मरण भी नहीं कर सका तो उसकी क्या गति होगी? पर जिसको भगवान् पहिले से चिता देते हैं वह तो भाग्यशाली है। वह प्रभु बड़ा दयालु है उसका कोई भी कार्य दया से रहित और अन्याय नहीं होता। हमें अपनी बुद्धि के दोष से प्रतिकूल या कठोर भासता है आपको चाहिये कि आप अपने आपको उसके चरण कमलों में सर्व भावेन समर्पण करदें। उसके हैं ही। किसी प्रकार चिन्ता न करें। मंगलमय की मंगल इच्छा में सहायक बन जायं। उसके साथ मिल कर उसकी जय मनावें। प्रभो! तेरी मंगल-इच्छा सफल हो। यह मन कदापि तेरी मंगल इच्छा में प्रतिकूलता न देखे। सर्वथा सर्वदा और सर्वत्र उसके अनुकल रहे।

सुखी कौन है।

[लेखक महात्मा राम]

सच्चिदानन्दकंदाय जगदंकुर हेतवे।
सदोदिताय पूर्णाय नमोऽनन्ताय विष्णवे॥ १॥

स मनुष्य की प्रज्ञा (बुद्धि) स्थित हुई है वह पुरुष ही दुनियां में सुखी है दूसरे अस्थिर बुद्धि वाले मनुष्य तो केवल दुःख के ही भाजन हैं। जिस मनुष्य ने संसार के समस्त भोग पदार्थों पर लात मार कर अपने मन इन्द्रियों पर काबू कर लिया है

वह जितेन्द्रिय पुरुष ही स्थितप्रज्ञ हो सकता है श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं:-

"वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता" ।

जिस मनुष्य की इन्द्रियां वशीभूत हो गई हैं उसी की प्रज्ञा प्रतिष्ठित (स्थित) होती है और जिस मनुष्य की इन्द्रियां अपने वशीभूत नहीं हैं वह इन्द्रियों के पीछे चलने वाला अनंत दुःखों को भोगता है। क्योंकि यह इन्द्रियां इस मनुष्य को अपने २ विषय भोगों में बलात्कार से खींच कर ले आती हैं और अपने आत्म सुखकी ओरसे हटा देती हैं

'पराँचि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्परांग पश्यति नान्तरात्मन्

परत्मामा ने इन्द्रियों को बाह्य विषयों पर गिरने वाला बनाया है। इस कारण मनुष्य बाह्य विषय पदार्थों को ही देखता है, अन्तर आत्मा को इन्द्रियों से नहीं देख सकता। कोई ज्ञानशील विवेकी पुरुष मोक्ष का अभिलाषी अन्तःकरण में स्थित आत्मा को देखता है। जो अज्ञानी पुरुष बाह्य पदार्थों के संयोग से उत्पन्न हुये विषय वासनाओं के पीछे भागते हैं वह मनुष्य मृत्यु के समीप जा रहे हैं और विवेकी पुरुष निश्चल मोक्ष के सुख को जान कर यहां अनित्य पदार्थों में सुख की इच्छा नहीं करते।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्यपरिपंथिनौ ॥

इन्द्रियों को अपने २ अनुकूल रूपादिक विषयों में स्वभाविक राग होता है और अपने प्रतिकूल विषयों में द्वेष होता है। राग द्वेषों के अधीन मनुष्यों को नहीं होना चाहिये। क्योंकि यह दोनों मनुष्य के उन्नति मार्ग के चोर हैं। राग द्वेष आदिक दुर्गुणों से मुमुक्षु पुरुष को बहुत सावधान रहना चाहिये। जिस मनुष्य का मन सर्वभूतों में समभाव से स्थित है, सर्व प्राणियों को एक ब्रह्मरूप करके देखता है, तथा मन इन्द्रियों के दोषों को जीतने वाला है वह सर्व दोषों से रहित सम-ब्रह्म-में स्थित है। बाह्य विषयों में अनासक्त पुरुष ही स्थिर बुद्धि से विलक्षण सुख को जानता है और परब्रह्म का साक्षात्कार करके मोक्ष के अक्षय सुख को अनुभव करता है।

ब्रह्मानन्द को अनुभव करने वाले पुरुष की दशा।

बुद्धि र्विनिष्टा गलिता प्रवृत्ति ब्रह्मात्मनोरेकतयाधिगत्या ।
इदं न जानेप्यनिदं न जाने किं वा कियद्वा सुखमस्त्यपारम् ॥

यह पुरुष ब्रह्म और आत्मा के एकत्व भाव को प्राप्त होकर सांसारिक पदार्थों को विषय करने वाली पूर्व काल की बुद्धि को नष्ट हुई देखता है। जिस बुद्धिने संसार के तुच्छ पदार्थों को अनुभव किया है उस बुद्धिको जब सर्व पदार्थों का अवधि रूप, अमूल्य रत्नों से परिपूर्ण आत्मानन्द का अनुभव होता है तब वह बुद्धि आत्मा के प्रकाश को त्याग कर पुनः उन तुच्छ पदार्थों को विषय नहीं करती ब्रह्मानन्द में जिस की बुद्धि आसक्त है ऐसे विद्वान् की लौकिक तथा वैदिक सर्व प्रकार की प्रवृत्ति नष्ट प्रायः हो जाती हैं और जिस जगत् को 'इदं' रूप से देख रहा था यह दृष्टि गोचर समुद्र, नदी, वृक्ष, पर्वतादि युक्त लोक है, तथा 'अनिदं' रूप से जो स्वर्गादि अदृष्ट लोक हैं इन को मैं नहीं जानता कि यह क्या हैं? जिस अपार सुख को मैं अनुभव करता हूं वह क्या है और कैसा है? इस प्रकार के

विवेक वाली बुद्धि अब एकीभाव को प्राप्त होकर किसी प्रकार के भेद भाव को नहीं देखती। यथा-

यत्रहि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं शृणोति तदितर इतरमभिवदति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरं विजानाति यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केनकं जिघ्रेत्तत्केनकं पश्येत्तत्केनकं शृणुयात्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन कं मन्वीततत्केन कं विजानीयात। येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयाद्विज्ञाता रमरे केन विजानीयात्।

याज्ञवल्क्य ऋषि ने मैत्रेयी के प्रति कहा कि हे मैत्रेयी! जिस अवस्था में यह पुरुष ब्रह्मात्मा से कुछ भिन्न की तरह जानने वाला होता है। तब गंध के ग्रहण करने वाले घ्राणइन्द्रिय को आत्मा से भिन्न जानता है, गंध को घ्राण इन्द्रिय से भिन्न जानता है, तथा नेत्र इन्द्रिय को आत्मा से भिन्न जानता है, रूप को नेत्र इन्द्रिय से भिन्न जानता है श्रोत्र को आत्मा से भिन्न जानता है श्रोत्र से शब्द को भिन्न जानता है, वाक् इन्द्रिय को आत्मा से भिन्न जानता है, वाक् से वक्तव्य को भिन्न जानता है, मन को आत्मा से भिन्न जानता है और मन से मन को भिन्न जानता है। जिस मोक्ष अवस्था में सर्व आत्म स्वरूप ही शेष रहता है।

'आत्मैवेदं सर्वं-एक मेवाद्वितीयम्'॥

यह जो कुछ दृष्टि गोचर हो रहा है सब आत्मा ही है तथा सजातीय, विजातीय, स्वगत, भेद रहित केवल आत्मा ही सत्य है। 'अतोऽन्यदार्तम्' और आत्मा से भिन्न जो कुछ दृष्टिगोचर होता है वह 'आर्त, कहिये तुच्छ है। जब सर्व ओर से आत्मा ही आत्मा है तब किससे किसको सूंघे, किससे किसको देखे, किससे किसको सुने, किससे किसको कथन करे किससे किसको मनन करे, किससे किस को जाने, जिस आत्मा द्वारा यह इन्द्रियां तथा इन्द्रियों के विषय जाने जाते हैं उस आत्मा को किस साधन से जाना जा सक्ता है। याज्ञवल्क्य कहते हैं 'अरे मैत्रेयी! सर्व के विज्ञाता आत्मा को इन जड़ पदार्थों द्वारा किस प्रकार जाना जावे किन्तु नहीं जाना जाता"! ऐसी अवस्था में जिसकी स्थिति है उसको सर्वथा द्वैत का अभाव होता है।

किं करोमि क्वगच्छामि किं गृह्णामि त्यजामिकिम्।
आत्मना पूरितं सर्वं महाकल्पांबुना इव॥

जैसे महाप्रलय काल में समस्त पृथ्वी जल मयी हो जाती है तैसे ही जब समस्त ब्रह्माण्ड आत्मा से परिपूर्ण हो रहा है तब कुछ कर्तव्य शेष नहीं रहा जिसके लिये कर्म करूं तथा आत्मा से भिन्न कोई गंतव्य स्थान भी नहीं और आत्मा से भिन्न कोई श्रेष्ट पदार्थ नहीं जिसको ग्रहण करूं। आत्मा से भिन्न कोई पदार्थ त्यागने योग्य भी नहीं है जिसका त्याग करूं। मैं आत्मा सर्व ओर से परिपूर्ण हूं।

आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चात् आत्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वमिती स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति'।

आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही आगे है, आत्मा ही दाहिनी ओर है, आत्मा ही बायें है, आत्मा ही यह समस्त ब्रह्माण्ड है। जो पुरुष इस प्रकार के आत्मा

को जानता है और इसी पूकार के आत्मा को मनन करता है तथा सर्व ओर में आत्मा को जानने वाला आत्मा में ही रमण करता है तथा चलना, फिरना, खाना, पीना आदि क्रियायें आत्मा में ही करता है, जो द्वन्द्व निर्पेक्ष विद्वान् केवल आत्मा सुख को भोगता है, तथा जो इन्द्रिय विषय भोग जन्य सुख के अभाव हुये भी आत्मानन्द में ही तृप्त रहता है वह सर्व का अधिपति होता है जो पुरुष बहुत मनुष्यों का स्वामी होता है उसे स्वराड् कहते हैं, अथवा जिसने अपने मन इन्द्रियों पर काबू किया है वह स्वराड् कहा जाता है। ऐसे विद्वान् पुरुष की सर्व कामनायें इन पृथिव्यादि सर्व लोकों में सफलीभूत होती हैं। आत्मानन्द से परिपूर्ण ब्रह्म रूप सागर के वैभव को वाणी कथन करने में असमर्थ है मनकी कल्पना से बाहर है।

क्व गतं केन वा नीतं कुत्रलीन मिदंजगत्।
अधुनैव मया दृष्टं नास्ति किं महदद्भुतम्॥

जिस विचित्र जगत् को मैं अभी प्रत्यक्ष में देख रहा था वह कहां चला गया कौन लेगया तथा कहां पर समा गया क्या यह महान् आश्चर्य की बात नहीं है? जिस ब्रह्मवेत्ता पुरुष की बुद्धि ब्रह्माकार हुई है तथा ब्रह्म रूप से स्थित है वह बुद्धि बाह्य विषय वासनाओं से मुक्त होजाती है और खान पानादिक व्यवहार भी दूसरे सेवकों से निवेदन किया हुवा निद्रालु पुरुष के समान तथा बालक के समान रह जाता है। केवल आनन्द मात्र ही अवशेष रहता है। बुद्धि की वृत्ति रूप धारा एक आत्माकार ही रहती है। निर्विकार और क्रिया से रहित ब्रह्म में जिसकी आत्मा-बुद्धि विलीन होगई है वह स्थित बुद्धि वाला जितेंद्रिय यति निरंतर ब्रह्मानन्द को भोगता है।

तत्त्व मस्यादि महावाक्यों द्वारा शोधन किये हुये ब्रह्मात्मा के लक्ष्यार्थ रूप एकत्व भाव को विषय करने वाली तथा सर्व कल्पना शून्य चैतन्य आत्माकार होने से चिन्मात्र स्वरूप वाली बुद्धि की वृत्ति पूज्ञा नाम से कही जाती है। वह पूज्ञा नाम से प्रसिद्ध बुद्धि जिस पुरुष की सर्व काल में एक रस बनी रहती है वह पुरुष स्थित पूज्ञ कहा जाता है। उसी स्थित पूज्ञ पुरुष के लक्षण श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता के दूसरे अध्याय में अर्जुन के पूति इस पूकार कहे हैं।

प्रजहाति यदाकामान् सर्वान् पार्थमनोगतान्।
आत्मन्येवात्मनातुष्टः स्थित प्रज्ञस्तदोच्यते॥

हे पार्थ! यह पुरुष जब अन्तःकरण में स्थित सर्व वासना जाल का त्याग कर देता है और अपने आत्मानन्द द्वारा आत्मा में ही सन्तुष्ट होता है तब वह पुरुष स्थित पूज्ञ कहा जाता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतराग भय क्रोधः स्थितधीर्मुनीरुच्यते॥

हे अर्जुन! शरीर सम्बन्धी दुःखों के पूाप्त होने पर जिसका मन उद्विग्न नहीं होता तथा सांसारिक सुख की इच्छा नहीं करता किन्तु पिय पदार्थों में राग, शत्रु से भय और अनिष्ट करने वाले पर क्रोध नहीं करता है वह मुनी स्थितपूज्ञ कहा जाता है! जो पुरुष किसी अनात्मिक पदार्थ से स्नेह नहीं करता तथा उन शुभ अशुभ पदार्थों के पूाप्त होने पर स्तुति निन्दा नहीं करता उसकी बुद्धि स्थित कही जाती है। जिस काल में यह साधक पुरुष अपनी सर्व इन्द्रियों को कछुवे के समान स्व स्व

विषयों से रोक कर स्थित होता है उसकी प्रज्ञा स्थित कही जाती है। जब यह पुरुष परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है तब इसके इन्द्रियों के विषय स्वभाविक ही छूट जाते हैं। इन्द्रियों के विषयों में जब रागद्वेष नहीं रहता तब शारिरिक कर्मों को करता हुवा भी मन इन्द्रियों को जीतने वाला पुरुष शान्ति को प्राप्त होता है। शान्त रहने वाले पुरुष के सर्वदुःख नाश हो जाते हैं और शान्त चित्त वाले पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही स्थित हो जाती है। कृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! जिस आत्मा के विवेक से यह सर्व प्राणी सोये हुये हैं अर्थात् नहीं जानते हैं उस अवस्था में इन्द्रियों के संयम वाले पुरुष जागते हैं अर्थात् आत्मा को जानते हैं। और जिस अविवेक अवस्था में संसार के विषय भोगों में यह भूत प्राणी जागते हैं दिन रात भोगविलसों में आसक्त रहते हैं। उस अवस्था में आत्म विवेकी पुरुष सोये रहते हैं जैसे सर्व ओर से अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में दिशा विदेशा से बहने वाली नदियां प्रवेश कर जाती हैं तैसे ही जिस पुरुष ने अपने मन इन्द्रियों को वश में किया है तथा आत्मानंद द्वारा तृप्त हुवा है उसकी सर्व कामनायें चित्त में विकार पैदा न करके लय हो जाती हैं। वह पुरुष परम शान्ति को प्राप्त होता है। जो पुरुष सर्व कामनाओं को मन से त्याग कर निरिच्छ होकर तथा निरममत्व निरहंकार होकर जहां चाहे विचरता है वह पुरुष शान्ति को प्राप्त होता है। जो पुरुष इस प्रकार ब्रह्मरूप से स्थिति को प्राप्त हुआ है वह पुरुष संसार के भोग पदार्थों में मोहित नहीं हो सकता तथा ब्रह्म में स्थिति वाला पुरुष प्राणों के अन्तकाल में भी सर्व दुःखों से रहित निर्वाण ब्रह्म को ही प्राप्त होता है।

महात्मा सच्चिदानन्द का उपदेश।

(ले० श्री भक्त शिरोमणि श्रीमथुराप्रसाद जी जयपुर)

परमहंस स्वामी सच्चिदानंद अपने कई शिष्यों के सहित भ्रमण करते हुवे जगदीशपुरी में पहुंच कर कुछ दिनों वहीं आसन लगा विराजते हैं उनके शिष्यों में सुख रामदास बड़े हैं। भिक्षा के लिये आज सुखरामदास नगरी में गये और एक आलीशान मकान के द्वार पर खड़े होकर ऊंचे स्वर से पुकारने लगे सीताराम! सीताराम! शब्द सुन कर झरोके से एक परम सुंदरी रूप यौवन से पूर्ण साक्षात् परी जैसी स्त्री शिर निकाल कर इनकी ओर देख कुछ मंद मंद मुसकराती हुई इस प्रकार बोली:-

महाराज! उस दरवाजे पर आइये भिक्षालाती हूं। उस मकान में पास ही दूसरा दरवाजा जनानी ड्योढी का था। साधु उस पर जल्दी से पहुंच गये और सुंदरी को पूरी सामग्री लिये खड़ी पाया परन्तु उसके अनूप रूप को देख ऐसे मोहित हो गये की सुध बुध भूल कर भिक्षा सामग्री के लेने को झोली बादने के स्थान में टकटकी लगा कर उस सुंदरी के चंद्रमुख को लुभावनी छटा को घूरने लगे, झोली डंडा हाथ से छूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सुंदरी (कुछ मुस्कराके) सन्त जी! चेत करिये झोली बांटिये भिक्षा लीजिये।

साधु-(सट पटा कर झोली पृथिवी से उठा कर सामने करते हैं) परन्तु सुंदरी झोली की तरफ बढाया हुआ हाथ समेट कर कहती है सन्तजी! आप ऐसी छोटी अवस्था में वैरागी कैसे बन गये कहिये आपके माता पिता कहां हैं और आपका विवाह भी हुआ था या कंवारे ही साधु बन बैठे और इस समय आपका चित्त कहां है क्या कोई नशा भी करते हैं?

साधु- नहीं देवी जी! मैं कोई नशा नहीं करता मैं ब्रह्मचारी हूं, और गुरु सेवा तथा हरि भजन के सिवाय कोई बात नहीं जानता, आपको देखते ही न जाने क्या होगया तन बदन की सुध भूल गया, क्षमा कीजिये और यह बतलाइये कि आप कौन हैं? आप से न्यारा रह कर मैं जीता नहीं रहूंगा यह मुझे निश्चय होगया है।

सुंदरी-ब्रह्मचारी जी यह मकान सेठ भगवंत रूप का है मैं उनकी कृपा पात्र दासी हूं, मैं भी आपको चाहती हूं परन्तु मिलना इस स्थान में नहीं हो सकता।

साधु-अच्छा तो मैं जाता हूं और निश्चय जान लीजिये कि मैं अब शीघ्र ही इस शरीर को आपके वियोग में छोड़ दूंगा।

सुंदरी-ठैरिये ठैरिये सन्तजी! आपको जितना मुझ से प्रेम है उससे अधिक मुझको आप में स्नेह और अनुराग है। मिलने का उपाय यह है कि कल सेठजी अपनी सेठानी सहित अम्बिका देवी की पूजा करने जाने वाले हैं, देवी का मंदिर एक विकट बन में है जो शहर से पांच कोस दक्षिण दिशा में है-यदि आप वहां आसकें तो मैं वहां आपसे एकान्त में मिलने का प्रबंध कर लूंगी और आपकी वहीं प्रतीक्षा करूंगी।

साधु-(प्रसन्न होकर) बहुत उत्तम बात आपने बताई आपको धन्यवाद देता हूं। लाइये भिक्षा दीजिये।

सुंदरी ने बहुत सा आटा दाल घृत आदि देकर साधु को विदा किया। साधु ने भिक्षा लेकर गुरुजी के पास पहुंच कर प्रणाम करके सारी सामग्री निवेदन करदी।

दूसरे दिन सुखरामदास गुरुजी की आज्ञा लिये बिना ही बन को चल दिया और अम्बिका देवी का मार्ग भूल कर सायंकाल तक इधर उधर भटकता हुआ बहुत कठिनाई से मार्ग पाकर जल्दी जल्दी पैर उठा कर सुंदरी के प्रेम में उन्मत्त हुवा चला जा रहा था कि मार्ग में एक सिंह गरजता हुआ सामने से आता दीख पड़ा। उससे भय भीत होकर भाग कर एक अंध कूप में गिर गया। कूप में एक वट के वृक्ष की जटायें झुकी हुई थीं उनको पकड़ कर नीचे लटक गया।

नीचे एक काला भुजंग फन उठाये ताक रहा था। पश्चात् उसे विदित हुवा कि जिस जटा को पकड़े हुवे वह लटक रहा है उसे दो चूहे एक काले रंग का दूसरा श्वेत रंग का काट रहे हैं। वह बहुत घबरा कर पुकारा परन्तु कोई सहायक नहीं दिखाई दिया। अन्त में थक कर मुख फैलाये हुवे ऊपर की ओर देखने लगा। इसी अन्तर में एक मोह की मक्खियों का छत्ता ऊपर दिखाई दिया उसमें से शहद की बूंदें टपक रही थी और साधु के मुख में वह बूंदें गिरती थी साधु उन शहद की बूंदों को पाकर सारे दुःख और चिन्ता को भूल कर मग्न हो गया

परन्तु जब २ काल भुजंग तथा लता काटने वाले चूहों की ओर ध्यान जाता था व्याकुल हो पुकारने लगता था कि त्राहि मां, त्राहि मां। इधर इसकी यह दशा थी उधर गुरुजी ने जब देखा कि शिष्य आज कहीं चला गया है आया नहीं तो उसे खोजने निकले। वह मार्ग में चलते २ यह पद गाते जाते थे।

जो मोहन में मन को लगाये हुवे हैं।
वो फल मुक्ति जीवन का पाये हुवे हैं॥
जो बंदे हैं दुनियां के गंदे सरासर।
वो फंदे में खुद को फंसाये हुवे हैं॥
जो सोते हैं गफलत में रोते हैं आखिर।
वो खोते रतन हाथ आये हुवे हैं॥
खतर है न जमका न डर मौत गम का।
जो गिरधर के दर सर झुकाये हुवे हैं॥
पकड़ पाया मथुरेश दामन को जिसने।
वही है मगन सब सताये हुवे हैं॥

खोजते खोजते गुरुजी उस अंध कूप के निकट शिष्य के खोज देख कर खड़े होकर निम्न पद ऊंचे स्वरों में गाने लगे।

जो दुनियां में दिल को फंसाये हुवे हैं।
वो कर्तव को अपने भुलाये हुवे हैं॥
बिसारा उसे कर्ता भर्ता जो सबका।
वो नाकाम हो सर झुकाये हुवे हैं॥
विषय विष को खाके जो हित को बिसरते।
वो करनी पै अपने लजाये हुवे हैं॥
पड़े फंद में जोकि माया के प्राणी।
अवश काल के मुख में आये हुवे हैं॥
अमन चैन में हैं हमेशा वही जन।
जो मथुरेश में मन लगाये हुवे हैं॥

अब आगे का वृत्तान्त कहने से पहले हम हरिजनों की चित्त वृत्ति को दार्ष्टान्त की ओर आकर्षित करना चाहते हैं-कि जीवात्मा सुखराम दास रूपी राम का दास जब माया के सौन्दर्य पर रीझ के उसकी खोज में दौड़ भाग करने लगता है तो संसार रूप अरण्य के अंध कूप में पड़ कर आयु रूपी लता के सहारे लटका हुवा जब काल भुजंग की तरफ विचार दृष्टि ले जाता और दिन रूपी श्वेत तथा रात्रि रूपी श्याम चूहे को इस आयु जटा की जड़ को काटते देखता है तो घबरा कर पुकार उठता है परन्तु विषय रूपी शहद की बूंदें प्राप्त कर मृत्यु भय को भी थोड़ी देर भूल जाता है और विषयासक्त होकर अपने सच्चे हितैषी गुरु से भी विमुख हो जाता है। सतगुरु परमात्मा जब कृपा करके उस घोर अंध कूप से उसे निकालते हैं तब ही माया के चक्कर से छुटकारा पाता है।

अब आगे का वृत्तान्त सुनिये अंध कूप में पड़े हुवे सुखराम दास शिष्य ने जब देखा कि चूहे उस जटा को जिसके सहारे लटक रहा था काट चुके हैं। तैयारी है कि नीचे पतन होकर काल सर्प के मुख में चला जाय तब जोर २ से पुकारना आरंभ किया। वह शब्द गुरुजी ने सुना तो कूप में से उसे निकाल कर अपने साथ ले गये। मार्ग में इस प्रकार गुरु शिष्य सम्वाद आरम्भ हुवा:-

महात्मा-अरे पुत्र सुखराम! तू कैसे कूवे में गिरा, सत्य कह।

शिष्य-महाराज! मैं जिस स्थान पर भिक्षा लेने गया था एक अति सुंदरी स्त्री को वहां देख

मोहित होगया। उसी की खोज में वन में भटकते २ एक सिंह का भयानक शब्द सुन कर कूए में गिरगया था। आपने बड़ी कृपा की। परन्तु मेरा चित्त उसी स्त्री में अटक रहा है और किसी ओर नहीं जाता। ऐसा उपदेश कीजिये जिससे मेरे चित्त को शान्ति मिले।

महा०-पुत्र! सत्संग के सिवाय कोई उपाय सद्गती प्राप्त होने का नहीं है। सत्संग करो बस इसी में कल्याण है।

शि०-महाराज आप बड़े भारी ज्ञानी विद्वान् हैं आप से अधिक उपदेशक दूसरा कौन होगा। आप ही मेरा अपराध क्षमा करके समाधान कीजिये।

महात्मा- देखो भाई! जीव और ईश्वर आपस में सखा भाव रखते हैं। उपनिषदों में स्पष्ट वर्णन हुआ है कि:-

"द्वा सुपर्णा सहजौ सखायौ समानं वृक्षं परिषस्वजाते"

ईश्वर जीवका परम हितु है। भगवत् गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने आज्ञा की है कि:-

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्तिते॥

मेरी यह माया दैवी और सतरज तम तीन गुण वालों बड़ी कठिनाई से पार होने योग्य है। जो मेरी शरण में आजाते हैं वे ही इस से तर सकते हैं। अर्थात् माया से छुटकारा पाने का मुख्य उपाय शरणागति है। इसलिये पहले ये ही समझने की आवश्यकता है कि शरणागति क्या वस्तु है? आज इतना ही समझलो कल हम विस्तार से शरणागति का वर्णन करेंगे। (क्रमशः)

उपदेशामृत।

[ले० श्री पूज्य भोलेबाबा अनूपशहर]

(१) एक ईश्वर में ही विशुद्ध और निष्कपट पूर्ण प्रेम करना चाहिये, परमेश्वर के ही भजन ध्यान में लगना चाहिये! ऐसा करने से आध्यात्मिक ज्ञान का उदय होता है, चित्त प्रसन्न रहता है अर्थात हृदय शीतल रहता है और परमात्मा का साक्षात्कार होता है। इस संसार में परमात्मा के सिवाय जो कुछ भी है, वह हमको अधर्म में प्रवृत्त करने वाला, भान्ति में डालने वाला, बंधन करने वाला और अशान्ति उत्पन्न करने वाला ही है, हमारे सुख का साधन नहीं है।

(२) इष्ट देवता अनेक प्रकार के हैं। किसी का इष्ट देव साढे तीन हाथ का मनुष्य है। किसी का इष्ट देव बाल बच्चे हैं। किसी की इष्ट देवी पत्नी है, किसी का इष्टदेव धन सम्पत्ति है, किसी का इष्टदेव धंधा व्यापार है, किसी की इष्टदेवी लोक कीर्ति है! प्रत्येक मनुष्य अपने इष्ट पदार्थ की उपासना करता है परंतु सच्ची शान्ति सम्यग्ज्ञान बिना प्राप्त होनी कठिन ही नहीं किंतु असंभव है।

(३) जो मनुष्य सांसारिक पदार्थों में केवल आसक्ति ही नहीं करता किंतु उनको दोषमय और दुःख दायी जान कर उनसे असंतुष्ट रहता है, वह ही सच्चा विरागी-विगतरागी है।

(४) सदाचारी धर्मोपदेशक का सम्मान करना, भाई बंधुओं का आदर करना, सन्देह वाली

वस्तु लेने को हाथ न लपकाना, धर्म का आचरण करना और लौकिक प्रवृत्तियों से दूर रहना, यह धर्म साधकों की नीति है।

(५) अपने ज्ञान और अहंभाव को दूर रख कर सन्त, महात्माओं, और धर्माचार्यों का उपदेश सुनने जाना चाहिये और ईश्वर कृपा का सर्वदा भरोसा रखना चाहिये। जो मनुष्य अहंभाव और चंचल चित्त से धर्माचार्य के पास जाता है, उसको सत्संग और सद्बोध का सच्चा लाभ नहीं होता।

(६) जब तक हमारा अंतः करण सांसारिक वस्तुओं से उपराम को प्राप्त होकर ईश्वर की भक्ति के मार्ग में आसक्त और परमेश्वर में श्रद्धा और बिश्वास न हो तब तक हम चाहे जितनी क्रियायें करें, चाहे जैसी उपासना करें, चाहे जितने उपवास करें, चाहे जितना तीर्थाटन करें, चाहे जितनी कथा वार्ता सुनें, और चाहे जितना सूक्ष्म ज्ञान एकत्र करलें, ईश्वर भक्तों की कृपा, उनकी रहनि सहनि, उनकी अवस्था अथवा उनकी पदवी हम को प्राप्त नहीं हो सक्ती।

(७) ईश्वर प्राप्ति के लिये जो कुछ मनुष्य करता है, उसका नाम विद्या अथवा भक्ति है और इसके सिवाय जो कुछ किया जाता है, वह सब अविद्या अथवा अभक्ति है। ईश्वर प्राप्ति का मार्ग लम्बा भी है और पास भी है, कठिन भी है और सहज भी है। दंभी, विषयासक्त और अभिमानी मनुष्यों के लिये ईश्वर का मार्ग लम्बा और कठिन है और सच्चे विरागी और निरभिमानी पुरुषों को पास और सहज है।

अनन्त कथाएं

(ले० पं० अनन्तराम जी योगाचार्य कसूर)

एक समय नारद मुनि संसार की सैर करके वैकुंठ लोक में जा निकले तो विष्णु भगवान् ने पूछा कि हे मुनिसत्तम! सुनाओ सृष्टि में क्या देखा। नारद जी बोले भगवन्! बहुत से लोग आपसे प्रार्थना करते रहते हैं कि "हम को दर्शन दो" परंतु आप किसी की सुनते ही नहीं। आप अपनी प्रभा करके हर जगह व्यापक हैं, इसलिये आपको किसी जगह भी दृश्य रूप में प्रकट होते हुए देर नहीं लगती फिर आप क्यों नहीं दर्शन अभिलाषियों की इच्छा पूर्ण करते हैं?

भगवान् ने मुसकरा कर कहा, हे नारद! हमारे मिलने की सच्ची अभिलाषा किसी के हृदय में नहीं है नहीं तो हम हर समय ही भक्तों को दर्शन देने के लिये उत्सुक रहते हैं। नारद जी बोले आप चल कर तो देखें कि अमुक नगर में कितने भक्त आपके दर्शन को तरस रहे हैं। भगवान् ने कहा अच्छा भाई चलो यह कह कर भगवान् उसके साथ हो लिये। नारदजी उनको एक ऐसे नगर के पास लेगए कि जहां के निवासियों को वह बड़े अच्छे भक्त समझते थे। भगवान् ने कहा लो हम इतनी दूर से आए इसलिये नगर से बाहिर किसी पवित्र स्थान पर बैठ जाते हैं। आप जा कर नगर में खबर करदो। जिन लोगों को दर्शन की लालसा है वह कुछ दूर तो नगर से बाहिर आनेका

परिश्रम करने की कृपा करें। इस प्रकार कह कर भगवान् तो एक स्थान पर बैठ गए और नारद जी ने नगर में सूचना करा दी कि "बाहिर अमुक स्थान पर भगवान् बैठे हैं जिसने दर्शन करने हों वहां चल कर करले"। यह सुन कर कई लोगों ने तो सच्चा ही न माना और कहने लगे कि नारद को भी सर्वदा उपहास ही प्रिय लगता है। भला कभी भगवान् भी इस तरह आसकते हैं, कुछ लोगों ने सोचा कि "चल कर देखें तो सही यदि दर्शन न हुए तो सैर ही हो जावेगी"। यह सोच कर कुछ लोग नारद के साथ चल पड़े, जब नगर से बाहिर कुछ दूर गए तो देखा कि रुपयों का एक ढेर लगा हुवा है। एक आदमी कह रहा है कि जितने रुपये कोई उठा सके लेजावे, यह सुनकर बहुत लोग वहीं टूट पड़े और झोलियां भर भर कर नगर को वापिस चल पड़े। नारद ने बहुतेरा ही कहा कि "भाई यह माया झूठी तथा अस्थिर है इसके पीछे क्यों पड़ते हो। आगे चलकर सत्य वस्तु को प्राप्ति करो जिससे पूर्ण आनंद की प्राप्ति हो। परन्तु वहां सुने कौन ? प्रत्यक्ष लाभ को छोड़ कर अव्यक्त पदार्थ के पीछे कौन पड़े। तोभी दो चार भक्त आगे चल ही पड़े, आगे जाकर वैसे ही एक ढेर मोहरों का पाया। वहां तो वह भक्त भी रह गए और मोहरें उठाकर वापस होगए, नारद ने बहुत सिर मारा परंतु किसी ने न सुना और नारद को अकेले ही भगवान् के पास जाना पड़ा। भगवान् बोले क्यों नारद। कोई जिज्ञासु लाये हो। नारद लज्जित होकर पाओं पर गिर पड़े और बोले "प्रभो तेरी माया अपार है, वास्तव में संसार में सच्चा जिज्ञासु कोई नहीं है, सब धोखे की टट्टी है। भगवान् ने कहा "आइंदा इस खब्त को छोड़दो, हमारे दरबारमें सिफारशकी आवश्यकता नहीं है सच्चे प्रेमी की आशा हम आप ही पूर्ण कर देते हैं, । नारद की आखों से प्रेम की धारा बह निकली और भगवान् अंतरध्यान होगए ॥

भगवद्भक्ति

(ले० श्री पण्डित रेवाधर जी पाण्डेय)

श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो।
क्लिश्यन्ति ये केवल बोध लब्धये ॥
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते।
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥

मनुष्यों को केवल विद्या पढ़ कर और कोरी परिडताई करके ही सन्तुष्ट न हो जाना चाहिये। कोई मनुष्य विविध विद्या पारङ्गत, प्रतिभाशाली और बहुदर्शी हो सकता है, किन्तु नैतिक बल और सच्च-रिता के अभाव से वह सभ्य समाज में गरय नहीं हो सकता। किसी के हृदय में जब कुवृत्ति का अभ्यास पड़ जाता है तब बुद्धि सहसा उसे नहीं रोक सकती। जिन्हें नैतिक बल का अभाव है उन्हें धार्मिक होने के लिये बुद्धि-बल का भरोसा करना वृथा है। नैतिक बल हीन व्यक्ति बुद्धिमान होकर भी कर्तव्य विमुख और अकर्तव्य परायण हो जाते हैं। जो शक्ति नैतिक बल में है वह बुद्धि में नहीं है। बुद्धि केवल मार्ग दिखलाने वाली है। पथिक जान बूझ कर पथच्युत हो जाय, इसकी उत्तर दायिनीबुद्धि नहीं। किन्तु

नैतिक बल पथ पर चढ़े हुए व्यक्ति को विचलित नहीं होने देता। मनुष्य को बुद्धि रहते भी नैतिक बल की उपेक्षा न करनी चाहिये। जैसे बुद्धि के साथ नैतिक बल का अल्प सम्बन्ध है वैसे ही विद्या के साथ भी बहुत ही कम सम्बन्ध है। यदि ऐसा न होता तो जो लोग उच्च शिक्षा पाये हुए हैं, साहित्य-संसार का अलंकार कहला कर विख्यात हैं, और मेधावी हैं, उनमें कोई कोई मद्यपानासक्त, अपव्ययी और दुराचारी क्यों होते हैं? उनकी वह विशाल विद्या, प्रतिभा और मेधा उन्हें पाप-चिन्ता और अपकर्म से क्यों नहीं हटाती? अतएव क्या स्त्री, क्या पुरुष, सबके लिए यही प्रथम शिक्षा आवश्यक है कि वे धर्म और नीति पन्थ के पथिक हों। जो शिक्षा धर्म और नीति से रहित है वह शिक्षा नहीं, वरन् कुशिक्षा है। जिस कर्म में धर्म और नीति का सम्बन्ध नहीं है वही अपकर्म है। दुःश्चरित्र विद्वान् से वह मूर्ख कहीं बढ़ कर अच्छा है जो सच्चरित्र है। सच्चरित्रता के अभाव से कोई अपना ही जब कल्याण नहीं कर सकता, तब वह दूसरों का कल्याण क्या कर सकेगा?

यद्यपि देश, काल, जाति, समाज और संस्कार के भेद से धर्म और उपासना भिन्न, भिन्न हैं तथापि सब धर्मों का मूल, सूत्र एक ही है। सभी सम्प्रदायों के उपास्य और आश्रय एक ईश्वर ही हैं। वही जगत्पिता हैं, वही सम्राट् के सम्राट् हैं, और वही चराचर के प्रधान शासक तथा पालक हैं। वे सत्य, प्रेम, दया, न्याय, ज्ञान और मङ्गल का अक्षय भण्डार हैं। उन सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर में अटल विश्वास और भक्ति करना ही धर्म का प्रथम साधन है। जिस पर तुम्हारी भक्ति होगी, जिस पर तुम्हारा प्रेम होगा, उसकी प्रसन्नता के काम तुम अवश्य करोगे। अतएव तुम्हारी यदि भगवान् में भक्ति होगी तो नीति पूर्वक लोकोपकारी काम करने की तुम में स्वतः प्रवृत्ति होगी और अनुचित कामों पर घृणा उत्पन्न होगी। श्रीकृष्ण भगवान् ने गीता में कहा है-

अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

किसी पाश्चात्य विद्वान् का कथन है कि "कर्तव्य का पालन करना ही धर्म है। जो लोग उचित कर्म का त्याग नहीं करते उनके धर्म की रक्षा आप ही आप होती है"। हमारे शास्त्रकारों ने भी तो यही कहा है।

"धर्मस्तु विहितं कर्म्म ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः"।

जीवन की सार्थकता तभी है जब धर्म का पालन होता रहे। धर्महीन जीवन मृत्यु का नामान्तर मात्र है बल्कि अन्याय पूर्वक जीवन से मरण श्रेष्ठ है। मनुष्यत्व का ज्ञान तभी हो सकता है जब ईश्वर में निष्कपट भक्ति और विश्वास उत्पन्न हो। निष्कर्ष यह कि मनुष्यों का प्रथम कर्तव्य प्रथम साधन भगवद्भक्ति ही है। जो ईश्वर के भक्त नहीं हैं वे मनुष्य होकर भी मनुष्यता से रहित हैं। अन्यान्य अनेक शुभ साधनों से चरित्र सर्वाङ्गसुन्दर होने पर भी उसकी कठोरता क्रूरता दूर नहीं होती और तब तक वह भक्ति प्राप्त नहीं होती जब तक पवित्र हृदयसे उसका अनुशीलन न किया जाय। ईश्वर में भक्ति उत्पन्न होने के अनेक साधन हैं। भक्त जनों का जीवन चरित्र और भक्ति मूलक ग्रन्थों तथा कल्याण, भक्ति, राम आदि मासिक पत्रिकाओं का

पढ़ना, भगवद्भक्त साधुओं से सत्संग करके उपदेशानुसार चलना, उनके चरित्र में सौन्दर्य और माधुर्य्य का अनुभव करना आदि। जो ईश्वर की भक्ति को हृदय से चाहेगा उसे वह अवश्य मिलेगी। अतएव यदि अपने मनुष्य जीवन को सार्थक करना चाहते तो हो भगवद्भक्त बनो।

दोहा—वारी मथे बरु होइ घृत, सिकता ते बरु तेल।
बिन हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल॥

भजन

जन मन भावन कुन्ज बिहारी ॥ टेक ॥
पृथिवी भई पाप ते व्याकुल, ब्रह्मा सदन सिधारी।
ब्रह्मा मिल शिव सदन गये हैं, भौं मिल छिर पग धारी॥
स्तुति करे जोर कर सब ही, वाणी भी हितकारी।
धरो धीर कछु दिन सब देवन, हरव दुष्ट मद गारी॥
जब वसुदेव गृह जन्म लीन प्रभु, दम्पति रूप निहारी।
जब दम्पति को कथा बुझाई, नन्द भवन पग धारी॥
पूतनादि राक्षस सब मारे, करि लीला बनवारी।
शकटासुर वृषभासुर मारे, दैत्यन किये क्षयकारी॥
माखन चोरी करी घर २ प्रभु, मुरलीधर गिरधारी।
पनघट रोक ईनडुरी लूटी, बहु लीला विस्तारी।
चीर हरण गोपिन के कीने, सखि जल मांहि उवारी।
मन वांछित फल दिये बृजग्वालिन, सुख सब दिये असुरारी
रास रच्यो वृन्दावन माहीं, गोपिन आनन्द कारी।
नचत बजत पायल पग झननन शोभा कहूं कहारी।
चलत मेघ चपला द्युति देखत, सुर सब चकित निहारी।
रूप देखि मोहित भये सब ही, कोटि मदन बलिहारी॥
जब अक्रूर आय प्रभु ले गये, नन्द सहित पग धारी।
मथुरा जाय कंस को मारा, नन्द फिरे मन हारी॥
गोपिन पूछत अहो नन्दजी, सांवरो कृष्ण कहांरी।
वचन न आवे नन्द के मुख से, सहित नैन मगवारी॥
तब ऊधो आये बृज मण्डल, योग कथा विस्तारी।
गोपी प्रेम दशा जब देखी, भूले योग कथारी॥
तब प्रभु पास जाय कर भाष्यो, हे दीनन हितकारी।
गोपी प्रभु मिलन आसा धरे, जीवन तजें विचारी।
द्वारावती को पग जब धारे, मुनि जन के हितकारी।
सोलह सहस्र आठ पटरानी, केवल मुरली धारी॥
सुख संयोग नित हि प्रति बाढ़े, देवन आनन्दकारी।
स्तुति करें शेष कर जोरी, अन्त न पाये हारी॥
जय मन मोहन जय मधुसूदन, जय दीनन हितकारी।
जय कुन्ज बिहारी गिरवर धारी, राधा रमण मुरारी॥
जय गोपिन पति जय पतितन गति, जय मुकुन्द बनवारी
रामनाथ कर जोर नवत प्रभु, लीनी शरण तिहारी॥

२

करो मन वा दिन की तदबीर ॥ टेक ॥
भव सागर नदिया अगम बहत है, जल थाह गम्भीर ॥ १
नाव न बेड़ा लोग घनेरा, खेवन हारा बेपीर ॥ २ ॥
घर बैठी चतुराई तिरया, मात पिता सुतबीर ॥ ३ ॥
दौलत दुनियां कौन चलावे, संग न जायगा शरीर ॥ ४ ॥
जब यम जालिम घेर लियो है, नेक न धरे है धीर ॥ ५ ॥
मारन सोटा प्राण निकालें, नयन गये भर नीर ॥ ६ ॥
जब यम राजा खम्बे बान्धें, व्याकुल भयो है शरीर ॥७॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अब न करेंगे तकसीर ॥८॥

३

को सिखवे अधमन को ज्ञाना ॥ टेक ॥
साधु संगत कब हूं नहीं कीना,
रटत रटत जग जन्म सिराना ॥ १ ॥

दया धर्म कबहूं नहीं चीन्हा,
नहीं लागे सतगुरु के काना ॥ २ ॥
कर्ता काज के वेदया राखें,
साधु आव तो घर नहीं दाना ॥ ३ ॥
कहैं कबीर जब यमपुर जैहैं,
मार हि मार उठे घमसाना ॥ ४ ॥

४

ब्रह्म का है आनन्द स्वरूप ॥ टेक ॥
निराकार निर्विकार निरञ्जन, ज्योति स्वरूप अरूप ॥१॥
अध ऊरध दायें अरु बायें, एक अखण्ड अनूप ॥ २ ॥
आनन्द को सब चाहें प्राणी, कहा रंक कहा भूप ॥ ३ ॥
एक ही परमानन्द विराजे, नहिं छाया नहिं धूप ॥ ४ ॥

५

प्रभु मैं शरणागति तेरी, निवारो शीघ्र विपत मेरी ॥टेक॥
अज्ञानी जानत नहीं धर्माधर्म विचार ।
जो तोहे भावे धर्म है दूजा सभी असार ॥
नाथ काटो ममता मेरी ॥ १ ॥
निराश्रयों का आसरा निरधारण आधार ।
मेरा तुम बिन कोई नहीं ऐ मेरे सिर्जन हार ॥
करो भव पार नाव मेरी ॥ २ ॥
तू प्रभु अगम अपार है बेहद और बे थाह ।
निराकार परमात्मा, सबसे बेपरवाह ॥
न जाने क्या मरजी तेरी ॥ ३ ॥
जो जो मैं हूं सो सो तू है तुझसा और न कोय ।
अहं आत्मा ब्रह्म हूं, यह ज्ञान समरपूं तोय ॥
प्रगट हो अब न करो देरी ॥ ४ ॥

६

मनवा राम नाम रस पीजे ॥ टेक ॥
तज कुसंग सत्संग बैठ नित, हरि चरचा गुण लीजे ॥ १ ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह को, चित्त से बाहर कीजे ॥२॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रंग में भीजे ॥३॥

७

बरसे बदरिया सावन की,
सावन की मन भावन की ॥ टेक ॥
सावन में उमग्यो मेरो मनवा,
भनक सुनी हरी आवन की ॥ १ ॥
उमड़ घुमड़ चहुं दिश ते आयो,
दामन चमके झड़ लावन की ॥ २ ॥
नन्हीं २ बून्दन मेहा बरसे,
शीतल पवन सुहावन की ॥ ३ ॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
आनन्द मंगल गावन की ॥ ४ ॥

८

या मोहन के मैं रूप भुलानी ॥ टेक ॥
हाट बाट मोहे रोकत टोकत,
या रसिया की मैं सार न जानी ॥
सुन्दर बदन कमल दल लोचन,
बांकी चितवन मंद मुसकानी ॥
जमना के नीरे तीरे धेनु चरावत,
बंशी में गावत मीठी बानी ॥
तन मन धन गिरधर पर वारूं,
चरण कमल मीरां लिपटानी ॥

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित	मूल्य	॥=)
२.	सारसंग्रह	,,	=)
३.	शब्दसंग्रह	,,	-)॥
४.	भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।-)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	-)।
६.	वेदोपनिषत्	,,	।-)
७	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	-)॥।
८.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	॥)
९	भक्ति योग संग्रह	,,	=)॥
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	-)।

मिलने का पता:—

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

केवल टाइटिल पेज महारथी प्रेस, दिल्ली में छपा।